योग सिद्धान्तों और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

वर्ष 32 जून, 1999 अंक 3

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन

संवाई (आगरा)-283 202

SIDDHYOG
JUNE, 1999

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्त श्री
चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

संयुक्त सम्पादक :
श्री भुवनेन्द्र झा

प्रबन्ध सम्पादक :
ब्र० राजेशचन्द्र शर्मा
चन्द्रशेखर 'दिव्य'
आचार्य चन्द्रहास शर्मा
राजेश कुमार श्रीवास्तव

एक प्रति	रु०	8-00
वार्षिक शुल्क	रु०	75-00
त्रिवार्षिक	रु०	140-00
आजीवन	रु०	750-00

इस अंक में

- अमृतकण 2
- विशेष लेख
  अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज... 3
- सम्पादकीय 12
- श्री प्रभुजी की जीवन की चमत्कारिक घटनायें
  सुभाष चन्द वर्मा 15
- श्रीमती शकुन्तला पर कृपा
  केशव देव उपाध्याय 22
- किमस्तियोगः
  श्री द्वारका प्रसाद शर्मा 26
- कर्मयोग
  स्वामी केशवाचार्य 30
- योगसिद्धि हेतु कैसे करें ध्यान
  जयनारायण 34
- नरदेह में नारायण
  डा. रुद्रदत्त चतुर्वेदी 37
- स्वामी विवेकानन्द ने कहा था...
  39

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 32
अंक 3

जून
1999

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विषदान योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

उपासना

अनेजदेकं मनसो जवीयो
नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्त—
स्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति।।

ईशावास्योपनिषद्—५

अर्थात्

वे परमेश्वर अचल एक और मनसे भी अधिक तीव्र गतियुक्त हैं; सबके आदि ज्ञानस्वरूप या सबके जानने वाले हैं; इन परमेश्वर को इन्द्रादि देवता भी नहीं पा सके या जान सके हैं; वे परब्रह्म पुरुषोत्तम दूसरे दौड़ने वालों को स्वयं स्थिर रहते हुए ही अतिक्रमण कर जाते हैं। उनके होने पर ही उन्हीं की सत्ता शक्ति से वायु आदि देवता जनवर्षा आदि क्रिया सम्पादन करने में समर्थ होते हैं।

अमृत कण

तिलेसु तैलं दधनीव सर्पिराप: स्रोतस्वरणीषु चाग्नि:।
एवमात्मात्मनि गृह्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् १/१५)

जैसे तिल में तैल, दधि में घृत, भूमिगत अन्त: स्रोतों में जल अरणि में अग्नि (अदृश्यरूप से) विद्यमान है, ठीक उसी प्रकार भगवत्तत्त्व अदृश्य अव्यक्त रूप से जगत में सर्वत्र व्याप्त है। उसे सत्य और तप द्वारा जाना जा सकता है।

* * * * *

वदन्ति तत्तत्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।।

(श्रीमद्भागवत् १/२/११)

परमब्रह्म अद्वय है। वह स्वजातीय विजातीय एवं स्वगत भेद रहित है। उसके समान या उससे भिन्न और कुछ नहीं है। यह जो कुछ है, सब उसी का प्रकाश है।

* * * *

अकामो धीरो अमृत: स्वयम्भू
रसेन तृप्तो न कुतश्चनौन:।
तमेव विद्वान् न विभाय मृत्यो
रात्मानं धीरमजरं युवानाम्।।

(अथर्ववेद १०/८/४४)

वह परमेश्वर परमप्रभु निष्काम है, धीर है, अमर है स्वयंभू है, अनादि है। वह रस से तृप्त है। आनन्दमय है। सर्वथा परिपूर्ण है। उस परमतत्व को जो लोग जान लेते हैं, उन्हें जन्म–मृत्यु का भय नहीं रहता।

* * * * *

देहदृष्ट्या तु दासोऽहं जीवबुद्धया त्वदंशक:।
वस्तुतस्तु तदेवाहमिति मे निश्चिता मति:।।

(मौक्तिकोपनिषद्)

मैं देहदृष्टि से आपका दास हूं, जीवदृष्टि से आपका अंश हूं, अर्थात् वास्तव में और ज्ञान की दृष्टि से जो आप हैं वहीं मैं हूं।

विशेष लेख

योगी बनो

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

देखो ! हर व्यक्ति को योगी बनना चाहिये। **न योगात्परतरं पुण्यम्** अर्थात् योग से आगे कोई पुण्य की वस्तु नहीं है। योग जैसी कोई पवित्र वस्तु संसार में दूसरी नहीं है। गीता में भगवान् ने योगी बनने की आज्ञा दी है–

'तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी, तस्माद्योगी भवार्जुन॥''

हे अर्जुन ! योगी का दर्जा तपस्वियों, कर्मकाण्डियों से ऊँचा है। योगी ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ होता है और कर्म काण्डियों से भी योगी श्रेष्ठ है। इसलिये तुम योगी बनो। आगे भी भगवान् श्री कृष्ण आदेश करते हैं–

'वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्य फलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वं विदित्वा योगी परम स्थानुपैति चाद्यम्।'

वेद में, यज्ञ में, तप में और दान में जो पुण्य फल कहा गया है योगी उन सब को लाँघ करके आदि परम स्थान को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार के आदेश भगवान ने गीता में स्थान–स्थान पर दिये हैं। इसलिये भगवान के वचनों को मानकर के हर व्यक्ति को योगी बनने का प्रयत्न करना चाहिये। गीता में भगवान ने **एक साख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति** अर्थात् सांख्य और योग को जो एक ही देखता है' वह यथार्थ देखता है ऐसा कहकर ज्ञान और योग के अभेद को बताया है। किन्तु निर्णय में एक बात फिर कह दी–

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति॥

अर्थात् योग के बिना संन्यास को प्राप्त होना कठिन है। किन्तु योगयुक्त मुनि शीघ्र ही ब्रह्मत्व को पा जाता है। संन्यास का मतलब है– काम्यनां कर्मणां न्यासः अर्थात् मन से सभी कामनाओं का न्यास, त्याग ही संन्यास कहलाता है। यह संन्यास बिना योग के संभव नहीं है। इस प्रकार से भगवान् कृष्ण ने गीता के अन्दर योग की ही महिमा गाई है। अर्जुन को आदेश दिया कि हे अर्जुन तू योगी बन जा। एक छोटी सी बात और है, जिसे मैं तुम्हें स्पष्टीकरण के साथ समझा देना चाहता हूँ। अर्जुन ने गीता में एक और प्रश्न किया है–

अयति श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः।
अप्राप्य योग संसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति॥

हे कृष्ण ! एक व्यक्ति ऐसा है जो योगी बनना चाहता है और योग मार्ग की ओर प्रवृत्ति है, श्रद्धा है। किन्तु कदाचित् किसी कारण से वह योग से विचलित हो जाता है या योग में बढ़ नहीं पाता है, तो वह किस गति को प्राप्त होता है कहीं ऐसा तो नहीं कि आकाश में उठने वाले जिस प्रकार

बादल वायु से छिन्न भिन्न हो जाते है, उसी प्रकार से वह बीच में ही नष्ट तो नहीं हो जाता है। मेरे इस संशय का आप निवारण कर दें।' यह शंका हर व्यक्ति के मन में उठ सकती है। भगवान ने इसका उत्तर देते हुये अर्जुन से कहा कि अर्जुन ऐसा व्यक्ति न तो इस लोक में नष्ट होता है और न ही परलोक में नष्ट होता है। कल्याण मार्ग की ओर जाने वाले का कभी नाश नहीं होता। शरीर छोड़ देने के बाद वह पुण्यात्माओं के लोकों को प्राप्त होता है वहाँ है। वहाँ पर वह बहुत समय तक वास करता है और फिर पवित्र धनवानों के घर में जन्म लेता है अथवा योगियों के ही घर में जन्म लेता है। वहाँ फिर पूर्वजन्म के बुद्धि संयोग को पाकर वह फिर योगाभ्यास में लग जाता है। योग का जिज्ञासु अर्थात् **'मैं योगी बन जाऊँ'** ऐसी इच्छा रखने वाला व्यक्ति भी कर्मकाण्डियों के दायरे से आगे निकल जाता है। देखो कर्मकाण्डी लोग स्वर्ग प्राप्ति के लिये हजारों अनुष्ठान करते हैं। तब कहीं जाकर उनको स्वर्ग की प्राप्ति होती है। किन्तु योगी को स्वर्ग दण्ड के रूप में मिलता है योग से भ्रष्ट हो गया इसलिये वह योग भ्रष्ट स्वर्ग को प्राप्त होता है। योग ध्यान से मन की एकाग्रता से जो पुण्य इकट्ठा हो सकता है वह सबसे बड़ा पुण्य है। तो इसलिये कर्मकाण्ड करते करते दान करते करते अनुष्ठान यज्ञ करते करते जितना पुण्य मनुष्य एकत्रित करता है, योगी ध्यान के प्रभाव से उन सब पुण्यों से आगे चला जाता है और भ्रष्ट हो जाने पर लम्बे समय तक पुण्यवानों के लोगों में स्वर्ग में निवास करता है। मेरे बड़े गुरु भाई ब्रह्म गोपालानन्द जी बताया करते थे कि योगी को स्वर्ग जेल के रूप में मिलता है। जिस प्रकार से बड़े–बड़े राष्ट्रीय नेताओं को जेल में तो रखा जाता है, किन्तु वहाँ पर उनको सब सुख सुविधा और आराम की वस्तुयें उपलब्ध रहती हैं। वे सुख से वहाँ रहते हैं। किन्तु उन्हें जेल के अन्दर ही रहना पड़ता है। संसारी लोग कर्मकाण्ड अनुष्ठान और नाना प्रकार के तप करते हुये जिस स्वर्ग को बड़ी मुश्किल से प्राप्त करते हैं, योगी को वह स्वर्ग जेल के रूप में भोगने को मिलता है। स्वर्ग लोक में और मनुष्य लोक में क्या अन्तर है, इसे मैं थोड़ा स्पष्ट कर दूं। देखो ! स्वर्गलोक के अन्दर विशेषता यह रहती है **न तत्र जरया बिभेति** अर्थात् वहाँ बुढ़ापा नहीं आता वहाँ पर रोग नहीं होते शरीर युवा बना रहता है। इच्छित भोग, संकल्प मात्र से मिल जाते हैं। देवताओं को दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है। वे वहाँ से मनुष्य लोक के प्राणियों को देख सकते हैं, आशीर्वाद दे सकते है; बातचीत कर सकते है। उनके संकल्प मात्र से सभी वस्तुयें उपस्थित हो जाती हैं। देवलोगों की ऐसी विशेषता होती है। उपनिषदों में इस प्रकार का लेख मिलता है **'श्रृण्वन् श्रोत्र् भवति'** अर्थात् स्वर्ग का कोई देवता यदि सुनना चाहता है तो जहाँ–जहाँ तक शब्द व्याप्त है वहाँ तक के सारे शब्द को सुन सकता है। मनुष्य लोक में हम लोग इस चार दीवारी के अन्दर की आवाज को सुन लेते हैं, इससे आगे हम सुन नहीं पाते। हमारे यहाँ जिन लोगों के कान कम सुनते है, वे लोग आला (यंत्र) लगाकर शब्द को सुन लिया करते हैं। जिन के कान ठीक है, वह

भी सीमित दूरी तक के ही शब्द सुन सकते हैं' योग दर्शन बतलाता है—

श्रोत्राकाशयो: सम्बन्धसंयमात् दिव्यम् श्रोत्रम्

अर्थात् श्रोत्र एवं आकाश के सम्बन्ध में संयम करने पर दिव्य श्रोत्र की प्राप्ति होती है। दिव्य श्रोत्र अर्थात् देवताओं वाले कान हो जाते हैं। दिव्य श्रोत्र के हो जाने पर योगी लाखों कोस दूर तक के शब्दों को सुनने वाला हो जाता है। मैं तुम्हें बता रहा था कि देवता लोग सुनना चाहें तो उनके दिव्य कान हो जाते हैं। **जिघ्रन् नासिका भवति** अर्थात् सूंघना चाहे तो दिव्य नासिका हो जाती है, **'रसनं जिह्वा भवति'** रस लेना चाहें तो देवताओं की दिव्य जिह्वा हो जाती है। अर्थात्.उनके पाँचों ज्ञानेन्द्रियों का इतना विस्तार हो जाता है कि वे एक स्थान पर बैठे–बैठे ही दूसरे लोगों में भी देख सकते हैं, सुन सकते हैं छू सकते हैं, आदि आदि। तुम विश्वास नहीं करोगे, क्योंकि आज के समय में यह अपरिचित सी बात हो गई है। योग तो भारत की अमूल्य निधि है। परन्तु आजकल का समय ऐसा है जिसमें मनुष्य के मन में अविश्वास की भावना आ सकती है। मैं तुम्हें आँखों देखी बतलाना चाहता हूँ कथा कहानी नहीं सुनाता हूँ। हमारे ऋषिकेश आश्रय में एक ब्रह्मचारी रहते थे वे मेरे गुरु भाई हैं। उन्हें मैं ठीक प्रकार से जानता हूँ (यह ब्रह्मचारी महापुरुष गुरुदेव जी स्वयं थे उनकी अपनी अनुभूत घटना है यह) उनके मन में थोड़ी सी एक चोट आई हमारे एक छोटे गुरु भाई नर सिंह मूर्ति थे। उनको किसी कर्मकाण्डी ने बरसाने में बहका दिया था। वह उन्हें योग से हटाकर कर्मकाण्ड की दीक्षा देने लगे, माला फेरने वाली। उन ब्रह्मचारी जी ने ऋषिकेश बैठे हुये ही उनको देखा। तुम सब हैरान होगे कि यह बात कैसे हो सकती है। किन्तु मैं तुम्हें सच्ची बात बता रहा हूँ। उन्होंने अपनी आँख उठाकर देखा क्योंकि उनकी आँख की नजर पहले हरिद्वार गई, फिर सहारनपुर गई और फिर खेतों जंगलों से होती हुई बरसाने में जहाँ गह्वर वन में उनको दीक्षा दी जा रही थी, पहुँची। उस ब्रह्मचारी ने अच्छी प्रकार से इन चीजों को खुली आँखों से देखा। ध्यान में बैठकर नहीं खुली आँखों से सब देख लिया। उस ब्रह्मचारी ने ऋषिकेश से ही नैपाल वाले दादा गुरु के चिमटे उस कर्मकाण्डी गुरु पर मारे, जो नर सिंह मूर्ति को दीक्षा दे रहा था। तब उसके गुरु कहने लगे—भई ! तुम्हारे गुरु भाई मुझे पीट रहे हैं, मार रहे हैं। दीक्षा तो उन्होंने दे दी थी। अस्तु 'मैंने तो उदाहरण देना था इसलिये यह घटना बताई है। मैं बता रहा था, स्वर्ग में देवता लोग देखना चाहते हैं। **तो पश्यन् चक्षुर्भवति** अर्थात् देखना चाहे तो दूर–दूर तक देखने वाली आँखें उनको प्राप्त हो जाती हैं। आँखें वस्तुत: वहाँ तक देख सकती हैं, जहाँ तक अग्नि तत्व व्याप्त हैं। जल में भी अग्नि होती है जहाँ तक हवा है, वहाँ तक योगी स्पर्श कर सकता है। देवताओं को ये दिव्य इन्द्रियाँ स्वाभाविक इच्छा मात्र से होती हैं। योगियों को ये ताकतें समाधि के अन्दर प्राप्त होती हैं। योगदर्शन में पतंजलि जी महाराज कहते हैं—

'तत: प्रातिभश्रावणवेदनादर्शस्वादवार्ता जायन्ते।'

योगी जिस समय असम्प्रज्ञात समाधि की ओर बढ़ता

है, तो योगी को प्रातिभ ज्ञान होने लगता है। प्रातिभ ज्ञान का अर्थ है जिस प्रकार अंधेरा खत्म होने लगता है और थोड़ा उजाला होने लगता है तो उसमें वस्तुयें दिखाई देने लग जाती हैं। इसी प्रकार से योगी को वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान होने लगता है। यह प्रातिभ ज्ञान है। **'श्रावण'** श्रावण का अर्थ है—दिव्य कर्णेन्द्रिय की प्राप्ति। इससे योगी दूर—दूर की बातों को जर्मनी जापान तक की बातों को सुन लिया करता है। इतने लम्बे कान योगी के हो जाते हैं। वेदना सिद्धि के आ जाने पर योगी लाखों मील दूर की वस्तु को छू सकता है—**'स्पृशति चन्द्रमसमपि'**। योगी चन्द्रमा को भी छू लेता है। आदर्श सिद्धि से उसे दिव्य नेत्र उपलब्ध हो जाते हैं जिससे वह दिव्य रूपों को देखने वाला बन जाता है। **'आस्वाद'** सिद्धि के दिव्य रसों को ग्रहण कर लेता है और वार्ता सिद्धि से दिव्य गंध का साक्षात्कार कर लेता है। उस की प्राण शक्ति अपरिमित हो जाती है। ये सारी की सारी शक्तियाँ योगी को समाधि के बल से प्राप्त हो जाती है। देवताओं में ये शक्तियाँ स्वाभाव से रहती हैं, योगी समाधि के बल से इन्हें प्राप्त कर लेता है। यदि योगी अभ्यास करते—करते योग से भ्रष्ट हो जाता है, तो उसको अगले शरीर में स्वर्ग सजा के रूप में मिलता है। वहाँ सब दिव्य ही दिव्य है। इस प्रकार भगवान् ने योग भ्रष्ट होने के विषय में जो अर्जुन की शंका थी, उसका निवारण किया था। श्री कृष्ण चन्द्र तुम्हारे भी प्राण हैं। और मेरे भी प्राण हैं। सारे प्राणियों के प्राण हैं। देखो ! कृष्ण चन्द्र कभी किसी के मोह में नहीं पड़े पुराणों को उठा कर देख लो उस प्रकार का कोई प्रसंग नहीं मिलता है। ब्रज मण्डल में गोपियों पर शक्तिपात किया और उन्हें जो कुछ बनाना था बना दिया। द्वारिकापुरी में एक बार नारद जी आ गये कहने लगे! 'महाराज ! आपके पास सोलह हजार रानियाँ हैं आप इन का क्या करोगे ? कृष्ण चन्द्र कहने लगे नारद ! तुम ठीक कहते हो ! तुम ऐसा करो जो रानी खाली बैठी हो उसे तुम ले जाओ। नारद जी सब रानियों के महलों में गये। कोई भी रानी खाली नहीं मिली सब जगह कृष्ण जी विराजमान थे। कहीं पर भोजन कर रहे थे कहीं पर यज्ञ कर रहे थे, कहीं पर वार्तालाप कर रहे थे। नारद जी चुपचाप लौट आये। कितनी बड़ी शक्ति थी निर्माणकाय की। जितनी रानियाँ उतने ही कृष्ण थे। रासलीला के समय में जितनी गोपियाँ थीं उतने ही कृष्ण थे। हर गोपी के साथ कृष्ण चन्द्र थे।

यह थी भगवान् की कायनिर्माण शक्ति। आज कल हर व्यक्ति कृष्ण तो बनना चाहता है। रासलीला करना चाहता है। पीले कपड़े पहन लेते हैं, बाँसुरी हाथ में ले लेते हैं कुछ औरतों को बहका कर रासलीला का अभिनय करते हैं। किन्तु यदि वे कृष्ण जी बनते हैं तो कम से कम अपना एक शरीर और बनाकर दिखायें यह सब नहीं होता है किसी से। भगवान कृष्ण चन्द्र का योगेश्वर्य सर्वत्र दिखाई देता है। उन योगेश्वर की आज्ञा है, सब को योगी बनने की। यदि बीच में भी भ्रष्ट हो जाओगे तो दिव्य स्वर्ग में बहुत समय तक वास करने के बाद पवित्र धनवान और योगियों के घर में ही जन्म लोगे, यह

भगवान् का सबको उपदेश है। मैंने किसी व्याख्यान में तुम्हें कानपुर के एक लड़के की बात सुनाई थी। कानपुर में हमारा बच्चा सुरेश चन्द शर्मा उस समय कई शुगर मिलों के मैनेजिंग डाइरेक्टर थे। उनके घर में हमारा योग प्रचार कार्यक्रम हर साल होता था। वह लड़का इस जन्म में डाक्टर था। परन्तु उसे अपने पूर्व जन्म की सारी बातें याद थीं। वह पूर्वजन्म में भी योगाभ्यास करता था। इस जन्म में धनवान कुल में पैदा हुआ था। वह इस समय २३–२४ वर्ष का है। उसने अपने पिछले जन्म के छत्तीस वर्ष के लड़के की शादी अपने खर्चे से की है। वह अपने पूर्वजन्म की सारी बातें बताता है। उसे अपने पूर्वजन्म में यह मालूम हो गया था कि शरीर छूटने वाला है तो वह ध्यान में बैठ गया फिर उसे याद नहीं रहा कि उसने शरीर कैसे छोड़ा। कहने का अभिप्राय है यदि योग ध्यान करते हो और थोड़ी बहुत वासना मन में रह गई है तो अगले जन्म में तुम्हें स्वर्ग मिलेगा। उसके बाद फिर पवित्र धनवानों के यहाँ तुम्हारा जन्म होगा। यदि वासना मन में न हो तो तुरन्त मनुष्य जन्म मिल जाता है। और वह योगाभ्यास में लग जाता है। योगदर्शन में भी **'भवप्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम्'** कह कर इस बात को प्रमाणित किया है। लोग प्रश्न किया करते हैं कि मीरा बाई, नरसिंह मेहता, तुलसी दास तथा बृज गोपियों ने कौन सी योग साधना की। उन्होंने भगवान को पाया है, लोग समझते हैं कि उनकी साधना योग से भिन्न है और योग कोई और वस्तु है। देखो ! योग के दो भेद हैं। साधन योग के अन्दर मनुष्य साधना करता हुआ धीरे–धीरे अपने परम लक्ष्य समाधि को प्राप्त कर लेता है। जैसे मैंने कल प्राणायाम का उदाहरण दिया था प्राणायाम का परिणाम बताया था— **'ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्'** प्राणायाम से प्रकाश के रास्ते में जो रुकावट आती है वह दूर हो जाती है। जिसके हट जाने पर दूर दर्शन, दूर श्रवण आदि आदि योग्यता प्राप्त हो जाती है। इन्द्रियों के मल जल जाने पर इन की शक्तियां असीमित हो जाती हैं। तप का फल बताया था कि— **'कायेन्द्रिय सिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः'** अर्थात् तप से शरीर और इन्द्रियों की अशुद्धि क्षय हो जाने पर कायिक और ऐन्द्रिय सिद्धि साधक को प्राप्त हो जाती है। कायिक सिद्धि का अर्थ है शरीर का बज्र की तरह कठोर हो जाना, अत्यन्त सुन्दर बन जाना, युवा बने रहना आदि–आदि। ऐन्द्रिय सिद्धि का अर्थ है। इन्द्रियों की अप्रतिहत गति का प्राप्त हो जाना अर्थात् उनके रास्ते में कोई किसी प्रकार की रुकावट न रहे तो वह ऐन्द्रिय सिद्धि कहलाती है।

पतंजलि जी ने एक सूत्र में समझाया है कि यदि योगी सूर्य में संयम कर ले तो, उसे सारे भुवनों का ज्ञान हो जाता है संयम क्या वस्तु है, पहले इसको भी समझना आवश्यक है। मैंने तुम्हें यह पहले बताया था कि योग के आठ अंग होते हैं यम–नियम–आसन–प्राणायाम प्रत्याहार–धारणा, ध्यान और समाधि। उनमें से यम से लेकर प्रत्याहार तक बाह्य साधना साध्य है। इनमें नेत्र बन्द करने की आवश्यकता नहीं। यम–नियम का पालन करना है मनसा वाचा कर्मणा, अपने शरीर मन पर संयम

रखना है। ये योग के पाँच बहिरंग कहलाते हैं क्योंकि इनका पालन बिना आँखें बन्द किये भी किया जा सकता है। किन्तु धारणा, ध्यान और समाधि अन्तरंग साधनाएं हैं, जो मन को एकाग्र करके ही साध्य होती हैं। धारणा शब्द का अर्थ है **'देशबन्ध चितस्य धारणा'** अर्थात् किसी एक लक्ष्य पर वृत्ति बंध से अपने चित्त को ठहराना। ये दो प्रकार की होती है बाह्य धारणा और आभ्यन्तर धारणा। बाह्य धारणा का अर्थ है कि हम किसी चीज को देखकर अपने मन को उसमें ठहरायें जैसे यह फूल है उससे हम मन को ठहरावें तो यह बाह्य धारणा कहलायेगी। आभ्यन्तर धारणा में हम अपने मन को शरीर के अन्दर किसी लक्ष्य पर केन्द्रित करते हैं। मानो हमारे मन के अन्दर भगवान शंकर के स्वरूप की कल्पना है, तो भगवान शंकर के स्वरूप में अपने मन को ठहराने के प्रयत्न को आभ्यन्तर धारणा कहेंगे। जिस वस्तु का ध्यान करते हैं, उनमें चित्त की वृत्ति उस आकार की रहे उसे वृत्ति बंध कहते हैं। इस धारणा के अभ्यास को यदि बराबर बढ़ाते चले जायें तो यह धारणा ध्यान के रूप में बदल जाती है। हम कल्पना करके देखते हैं कि भगवान् शिव बैठे हुये हैं। यह कल्पना है किन्तु जिस समय यह धारणा के रूप में बदल जायेगी, उस समय भगवान शिव दिखलाई देने लगेंगे। ध्यान का अर्थ है **तत्र प्रत्ययेकतानता ध्यानम्** अर्थात् वृत्ति में सदृश प्रवाह का होना। सदृश प्रवाह का अर्थ है जिस प्रकार से एक बर्तन से तेल गिराना शुरू कर दें, तो वह धारा बीच में टूटेगी नहीं। इसी प्रकार से चित्त की वृत्ति धारा की भाँति लक्ष्य पर स्थिर रहे उसे ध्यान कहते हैं। जिस का हम ध्यान कर रहे हैं वह बराबर हमें दीखते रहे यही ध्यान है। वही ध्यान अभ्यास परिपाक से कालान्तर में समाधि में बदल जाया करता है। समाधि का अर्थ है। **'तदेवार्थमात्रनिर्भासम् स्वरूपशून्यमिव समाधि।'**

अर्थात्–जिसमें साधक जिसका ध्यान करता है वही दीखता रहे वही भासित होता रहे वह 'समाधि' है। जैसे भगवान शिव का हम ध्यान कर रहे हैं, ध्यान करते–करते हम अपने आप को ही शिव समझने लगें, 'शिवोऽहम्' की अनुभूति होने लगे, हमें अपना शरीर शंकर के स्वरूप जैसा दिखाई देने लगे, हमें यह ज्ञान न रहे कि अमुक मेरा नाम है, मैं अमुक स्थान पर बैठा हूँ आदि–आदि। इस प्रकार से साधक अपने को अपने इष्ट के रूप में देखता है, उसे **कृष्णोऽहम् रामोऽहम शिवोऽहम् की अनुभूति** रहती है वह समाधि है। इस के साथ–साथ इस प्रकार का ज्ञान कायम हो जाने पर भगवान शिव राम आदि के भक्तों को अपना भक्त देखता है। समाधि और संयम में कोई खास अन्तर नहीं है। संयम का अर्थ है। **'त्रयमेकत्र संयमः'** धारणा ध्यान और समाधि एक विषयक हो जायें, तो उसे संयम कहते हैं अर्थात् जिसकी धारणा करनी आरम्भ की थी, वही ध्यान में आये और उसी में समाधि हो जाये, ये तीनों जब एक विषयक होते हैं, तो उसका नाम संयम हो जाता है। 'भगवान' पतंजलि जी कहते हैं **'भुवन ज्ञान सूर्ये संयमात्'** यदि योगी सूर्य में संयम करता है अर्थात् योगी सूर्य के अन्दर अपने आप को मिला

लेता है, तो उसको सारे भुवनों का ज्ञान हो जाता है सूर्य में संयम का अर्थ यह नहीं होता कि हम आँख उठाकर सूर्य को देखना शुरू कर दें। चण्डीगढ़ में कुछ दिन पहले एक व्यक्ति ने ऐसे ही त्राटक की विधि से सूर्य को देखना शुरू किया था परिणाम यह हुआ कि वह तीन दिन में अंधा हो गया। संयम का तरीका यह नहीं था। भीतरी सूर्य के अन्दर लयता प्राप्त करने को संयम कहते है। तदाकार वृत्ति का नाम 'संयम' है। इस प्रकार से साधना योग का विद्यार्थी, साधन करते–करते समाधि को प्राप्त करता है। योग प्राप्ति का दूसरा मार्ग है। सिद्ध योग का। सिद्ध योग का विद्यार्थी एक दम समाधि को प्राप्त हो जाता है। योग क्या है ? तुम लोग पहले इसे समझ लो। भगवान पतंजलि ने **'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः'** कहकर योग की परिभाषा की है। चित्तवृत्तियों का बिल्कुल निरोध (समाप्त) हो जाना योग है। 'योगः समाधि समाधि को ही योग कहते हैं। **''समाधि समतावस्था जीवात्मपरमात्मनः''** अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा की अभिन्नता को समाधि कहते हैं। समाधि में योगी का बौद्धेय ज्ञान समाप्त हो जाता है। वह अपने आत्म स्वरूप में स्थित हो जाता है। इसी का नाम कैवल्य है इसी का नाम केवली भाव है। मैंने तुम्हे पहले भी समझाया था। आत्मा अखण्ड ज्योति रूप है–

'अच्छे द्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्यो ऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।'

यह आत्मा अछेद्य है, अदाह्य है, अक्लेद्य है और अशोष्य है, अर्थात् इसे शस्त्र काट नहीं सकते, अग्नि जला नहीं सकती। जल गीला नहीं कर सकता, वायु सुखा नहीं सकती। यह आत्मा नित्य है, सर्वव्यापी है कूटस्थ (अविकारी) और सनातन है। इस प्रकार से भगवान् ने गीता में आत्मा के स्वरूप का वर्णन किया है। शंका होती है यदि आत्मा अविकारी है तो विकारी जैसा क्यों दिखाई देता है ? यह अपने को सुखी दुःखी क्यों मानता है ? इसका कारण मात्र एक है। अविद्या के संयोग से ऐसा होता है। जैसे आत्मा के संयोग से बुद्धि को चेतना मिल गई और जो बुद्धि के सुख दुःख आदि धर्म है वे आत्मा में आरोपित हो जाते हैं इसी को जड़ चेतना की गांठ अथवा अविद्या ग्रन्थि कहते है। सब योगी, महात्मा, साधक इस अविद्या ग्रन्थि भेदन के लिये ही लगे हुये है। मैं तुम्हें साधन योग से सम्बन्धित बाते बता चुका। योग प्राप्ति का दूसरा रास्ता सिद्धयोग है जिसे मैं तुम्हें समझा रहा हूँ। सिद्धयोग में सिद्धलोग जहाँ जिस पर कृपा किया करते है, वह चाहें अभिमानी है क्रोधी है, दुष्ट है, किन्तु जहाँ शक्तिपात हुआ वहाँ उसकी समाधि हो जाती है और इस प्रकार से सिद्ध लोग अपने उन शिष्यों को जंगलों में ही रख लेते हैं। उन्हें वे लोग महीना–महीना, दो–दो महीना समाधि में बिठा देते हैं। उसके बाद एक आध दिन उठने के बाद फिर बैठ जाते हैं। इस प्रकार से धीरे–धीरे कई–कई महीनों की समाधि होने लगती है। ऐसी स्थिति में उनकी जो वृत्ति है उसका शमन हो जाता है। निर्बीज' समाधि में **'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'** अर्थात् आत्मा अपने स्वरूप में स्थित हो जाती है। जब तक समाधि रहती है, यह स्थिति रहती है।

व्युत्थान (समाधि भंग) में आ जाने पर– **'वृत्ति सारुप्यमितरत्र'** के अनुसार जैसा उस का स्वभाव होता है। वैसे ही बरतने लग जाता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, बुद्धि कृत है, इसलिये व्युत्थान में जैसा स्वभाव बना हुआ है, योगी वैसे ही बर्तता है। दुर्वासा जी का क्रोधी स्वभाव वाला होना प्रसिद्ध है। जब तक वह समाधि में रहेंगे। उस समय तक उनकी वृत्ति स्वरूप में लय होकर तदाकार रहेगी। किन्तु जब समाधि से उठ जायेंगे तो **वृतिसारुप्यम्** के अनुसार वर–शाप आदि देने लगेंगे। **'वृतिसारुप्यम्'** के समय आत्मा का रूप भी बुद्धि के धर्मों जैसा ही प्रतीत होने लगता है।

सिद्ध लोगों के संपर्क में कोई पुण्यात्मा आ जाता है। तो सिद्ध लोग उस पर शक्तिपात करके समाधि में बिठा देते हैं।

सिद्ध लोग कभी–कभी कामी, क्रोधी, लोभी पर भी शक्ति पात करके उसे समाधि की ओर बढ़ा देते हैं। तुम लोग अपने मन में सोचते होंगे कि ऐसे लोगों पर सिद्ध शक्ति पात क्यों करते हैं, जब तक उनकी वृत्ति शुद्धि नहीं हो जाती ? देखो वृत्ति चाहे पुण्यात्मिका हो या पापात्मिका, दोनों ही हेया है। पुण्यात्मिका वृत्ति भी बंधन का कारण बनती है। इस वृत्ति के कारण मनुष्य को जन्म–मरण के चक्कर में रहना पड़ता है। अच्छी वृत्ति के परिणामस्वरूप स्वस्थ शरीर, ऊँचा पद मिलता है और सुख सुविधायें मिल जाती हैं। किन्तु उसका बंधन से छूटना नहीं होता, इसी प्रकार से कठोर अर्थात् क्लिष्ट वृत्ति भी बंधन का कारण ही है। इसलिये बार–बार समाधि के अभ्यास से इन दोनों वृत्तियों को ही समाप्त करना होता है। मैंने तुम्हें बताया था कि शक्तिपात कर देने के बाद सिद्धयोगी अपने शिष्यों को फिर जमीन पर जनसमूह में आने नहीं देते। क्योंकि यहाँ आकर वह फिर वर शाप के झमेले में पड़कर पतन की ओर जा सकते हैं। उदाहरण के रूप में इस बात को समझा दूँ। हमारे गुरु भाई हरिहरानन्द जी शीशागिरी पहाड़ी पर तीन महीनों में समाधि से उठते हैं। श्री प्रभु जी ने उन्हें तीव्र शक्तिपात करके, भूत जयी सिद्ध बनाकर वहाँ 'बिठा दिया' इसी का नाम सिद्धयोग है। एक बार हरिद्वार कुम्भ में हमारे गुरु भाईयों की इच्छा हो गई कि हम उनके दर्शन करें। उन्होंने मिल कर श्री प्रभु जी प्रार्थना कि प्रभू जी ! हम लोगों की इच्छा है कि हम लोग भाई हरिहरानन्द जी का दर्शन करें आप कृपा कर उन्हें बुला लें। प्रभु जी कहने लगे 'उसे यहाँ मत बुलाओ, वह आने लायक नहीं है' किन्तु वे सब हठ करने लगे। अन्त में प्रभु जी ने कहा तुम ध्यान में बैठकर कहो गुरुदेव का हुकुम है चले आओ।' गुरुदेव का हुकुम पाकर हरिहरानन्द जी वहाँ से चल पड़े अवस्था उनकी २०–२४ साल की थी। समाधि की अवस्था के योगी का शरीर घटता बढ़ता नहीं है। योगी लोग प्राणकोश को ऊपर सहस्त्रार में चढ़ा लेते हैं। शरीर की क्रियायें बन्द ही रहती हैं। कभी–कभी प्राणकोश नीचे ले आते है तो उठकर कन्दमूल आदि भी खा लिया करते हैं। हरिहरानन्द जी पहाड़ से नीचे उतर कर आने लगे। आते समय किसी गाँव के पास वृक्ष के नीचे बैठ गये। वे नग्न शरीर थे और वहाँ पर विश्राम कर रहे थे। इतने में

गाँव के कोई ठाकुर साहब आये उसे देखकर ताड़ते हुये कहने लगे नंगा पड़ा हुआ है, उठ जाओ और चले जाओ यहाँ से, वह तो उठे नहीं। इस पर ठाकुर साहब ने उनकी पीठ पर दो तीन छड़ी मार दी। हरिहरानन्द जी क्रोध से उठ गये और कहने लगे अच्छा मैं तो उठ गया, परन्तु तू यहीं गिर जा। वह वहीं गिर गया और उसके प्राण छूट गये। श्री प्रभु जी उस समय हरिद्वार में भोजन कर रहे थे। अचानक कहने लगे—होह ! बहुत बुरा हुआ ! तुम लोग मानते नहीं हो। देखो हरिहरानन्द ने एक आदमी को शाप देकर मार दिया है। अब तुम जाओ उसे कह दो कि वह वहीं से वापिस लौट जाये। एक गुरु भाई ने वहाँ जाकर उन्हें कह दिया कि 'प्रभु जी की आज्ञा है तुम वापिस लौट जाओ। वह वहीं से वापिस लौट गया। मैं तुम्हें बता रहा था कि सिद्धलोग शक्ति पात करके अपने शिष्यों को इसीलिये जमीन पर आने नहीं देते। वर—शाप की शक्ति उनमें स्वाभाविक होती है। यहाँ आकर हिताहित करेंगे इसलिये सिद्ध गुरु देव शिष्यों को जमीन पर आने नहीं देते। सिद्ध योग में गुरुदेव की कृपा से शिष्य सीधे समाधि की स्थिति पर पहुँच जाता है। मीरा बाई, नरसिंह, तुलसी दास आदि—आदि जितने भी भक्त योगी हुये हैं, सब पर सिद्ध गुरु की कृपा हुई और उन्हें अन्तदर्शन होने लगा। सिद्ध संगति से ही मनुष्य योगी बनता है। मनुष्य चाहे कुछ भी साधना करता है, किन्तु पुण्य के प्रभाव से सिद्धानुकम्पा से ही वह कृतार्थ होता है, योगी बनता है। तुम्हें यह भी याद रखना चाहिये कि सिद्ध दो प्रकार के होते हैं, एक अनादि सिद्ध ईश्वर दूसरे साधना सिद्ध योगिराज सिद्धयोग के अन्तर्गत इन दोनों प्रकार के सिद्धों में से किसी की भी कृपा हो जाये तो मनुष्य योगी बन जाता है इसलिये तुम सब को इस अनमोल—निधि को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये। मनुष्य पूरा धनी, योग से ही बनता है।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।

ये भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र के वचन हैं। योग को पाकर के ही मनुष्य सब प्रकार से धनी होता है। मैं समझता हूँ कि हिन्दुओं के अतिरिक्त संसार में ईसाई, यहूदी, पारसी आदि—आदि धर्मों के उपासक भी योग को ही प्राप्त होते हैं। तभी उन्हें ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। बिना योग के किसी को भी सत्य ज्ञान, ईश्वर दर्शन एवं परम गति की प्राप्ति हो ही नहीं सकती। बड़े भाग्य से योग मार्ग मिलता है। इसलिये होशियारी करो। यदि तुम मेरे बच्चे हो, मेरी बात को मानते हो तो २ घण्टे जाप एवं एक घण्टा ध्यान का नियमित अभ्यास करते चले जाओ। अपने पुरुषार्थ में लगे रहो। यदि इधर—उधर के झमेले में पड़े रहोगे, अपना अमूल्य समय नष्ट करोगे यह बहुत बुरी बात होगी। मनुष्य का जीवन बहुत कठिनाई से मिलता है। समय रहते अपने अभ्यास में लग जाओ और अपने आप को इस परम पवित्र मार्ग की ओर बढ़ाते चले जाओ। यदि ऐसा करोगे तो आनन्द कन्द श्री प्रभु जी की अवश्य कृपा होगी। वे अपने हर बच्चे को नैपाल, हिमालय में बैठे—बैठे ही देखते हैं। इसलिये उन चरण कमलों का चिन्तन करते हुये साधनारत हो जाओ। यही कल्याण का मूल साधन है।

***

योग साधना से ही मनुष्य सर्वज्ञ बन सकता है

इस सृष्टि में कोई भी घटना अनहोनी नहीं होती है। कार्य एवं कारण के सम्बन्ध को ठीक प्रकार से जान लेने पर सृष्टि के हर घटनाक्रम को हम स्वाभाविक रूप से देख सकते हैं। बिना कारण के कोई भी कार्य नहीं हो सकता यह सांख्यशास्त्र का अटल सिद्धान्त है। दार्शनिक क्षेत्र में कारणवाद Theory of Causation के विभिन्न रूप मान्य हैं। सतकार्य भी इसी का रूप है। इस सिद्धान्त के अनुसार कार्य अपनी उत्पत्ति से पूर्व भी कारण रूप से या कारण में सत् अर्थात् विद्यमान रहता है। इस सतकार्यवाद का ही एक अवान्तर सिद्धान्त है— **'सर्वसम्भवाभावात्'** अर्थात् सब वस्तुयें सभी वस्तुओं को उत्पन्न नहीं कर सकती है। जैसे रेत से तेल नहीं निकाला जा सकता। इसलिये कार्य एवं कारण का सम्बन्ध सक्षम होना चाहिये। आधुनिक दार्शनिक भी Cause and effect के सम्बन्ध को खूब महत्व देते हैं। गीता में भगवान इसी बात की पुष्टि करते हुये अपने मुखारविन्द से कहते हैं— **'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत:'** अर्थात् जो असत्—अविद्यमान है वह उत्पन्न नहीं किया जा सकता और जो विद्यमान है— भले ही वह इन्द्रियगोचर नहीं हो रहा हो—उसका अभाव नहीं होता। मन—बुद्धि, आत्मा सूक्ष्म होने के कारण सामान्य मनुष्य के अनुभव में नहीं आ पाते किन्तु जिन्हें सूक्ष्म दृष्टि प्राप्त है वे इनके अस्तित्व को देखा करते हैं। सूक्ष्म दृष्टि प्राप्त योगी की क्षमता को बताते हुये भगवान गीता में कहते हैं—

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञान चक्षुषः।

अर्थात्—एक शरीर के प्रारब्ध को समाप्त कर चुके दूसरे शरीर में प्रवेश करने वाले अथवा स्थित हुये जीवात्मा को ज्ञान चक्षु वाले योगी देखा करते हैं किन्तु मूढ़ लोग इसे नहीं देख पाते हैं। इसका सीधा सा कारण यह है कि इस प्रकार के क्रिया—कलाप देखना इन्द्रियों की क्षमता से परे की बात है। इन्द्रियों की सीमित क्षमता है। भौतिक प्रकृति के ही परम अणु के सूक्ष्म भाग इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन और न्यूट्रोन को हम अपनी सामान्य आंखों से नहीं देख सकते। मन आदि इससे भी सूक्ष्म तत्व हैं। इसलिये हमारी इन्द्रियों के विषय नहीं बन पाते। यदि यन्त्रों का सहयोग लिया जाये तो भी हम भौतिक प्रकृति के वर्तमान स्वरूप को ही देख पायेंगे इसके पूर्वापर स्वरूप को नहीं। हमारी इन्द्रियों को वर्तमान कालिक ज्ञान होता है। त्रिकालिक ज्ञान इनका विषय नहीं है। त्रिकाल का ज्ञान अन्त:करण से ही होता है। इसलिये सांख्यकारिकाकार ने **'साम्प्रतकालं बाह्यं, त्रिकालमाभ्यन्तरं करणम्'** का सिद्धान्त दिया है।

संसार में मनुष्य के लिये रहस्य ही रहस्य बने हुये हैं। हमें जो शरीर प्राप्त है हम उसके पूर्वा पर अवस्था को नहीं जान पाते इसलिये संसार में विभिन्न मत, सम्प्रदाय एवं धर्मों में पुनर्जन्म आदि भिन्न–भिन्न धारणायें बन जाती हैं। कुछ लोग इस शरीर का पुनर्जन्म मानते हैं। कुछ नहीं मानते।

मनुष्य स्वभाव से ही रहस्यों को जानने का उत्सुक रहता है। संसार में ऐसा कौन मनुष्य होगा जो यह न चाहे कि मैं सर्वज्ञ बनूं सृष्टि के समस्त भेद को उद्घाटित कर देख सकूँ। किन्तु उत्कट अभिलाषा के बावजूद भी वह असमर्थ बना रहता है।

हमारे पूर्वजों ने वह विज्ञान दिया है जिससे हम सृष्टि के हर रहस्य को जान सकते हैं। परमात्मा ने अन्तःकरण रूपी यन्त्र सब को दे रखा है यदि इस यन्त्र को स्वच्छ व ठीक स्थिति में रखा जाये तो इससे हमें त्रिकाल का ज्ञान हो सकता है। योग साधना का लक्ष्य भी अन्तःकरण शोधन ही है। **'योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगम् त्यक्त्वा आत्मशुद्धये'** योगी लोग आसक्ति छोड़कर अन्तःकरण की शुद्धि के लिये कर्म करते हुये देखे जाते हैं।

इस सृष्टि में सम्पूर्ण विज्ञान का नाम योग विज्ञान है। आत्मवेत्ता से बड़ा कोई विज्ञानी नहीं हो सकता। अज्ञान ही दुःख रूप है और ज्ञान सुख व मोक्ष स्वरूप है। **'योगात् संप्रज्ञायते ज्ञानम्'** योग से ही ज्ञान की उत्पत्ति होती है। इसलिये योगी के लिये इस सृष्टि में कोई भी पदार्थ अज्ञेय नहीं है।

त्रिकाल ज्ञान की प्राप्ति का एक सूत्र भगवान पतंजलि जी ने दिया है— परिणाम त्रय संयमात् अतीतानागत ज्ञानम्' अर्थात् वस्तुओं की परिणाम में होने वाली तीन अवस्थाओं में संयम कर लेने पर योगी को भूत और भविष्य का ज्ञान हो जाता है। समाधि की सिद्धावस्था का नाम संयम है। इसके सिद्ध हो जाने पर योगी सर्वज्ञता की ओर बढ़ जाता है। सामान्य मनुष्य इन्द्रियों के माध्यम से वर्तमान कालिक ज्ञान को ही प्राप्त किया करता है। वस्तुओं व घटनाओं की पूर्वापर सम्बन्धों व संस्कारों को वह नहीं जान पाता।

अज्ञानी लोग कहा करते हैं सिद्धियाँ ठीक नहीं होती इसलिये हमें इनकी आवश्यकता नहीं है किन्तु उन्हें याद रखना चाहिये कि योगी को ऋतम्भरा के द्वारा जो अन्तर्ज्ञान स्फुटित होता है जिसे विवेकजज्ञान कहते हैं। वह भी एक प्रकार सर्वोत्कृष्ट सिद्धि ही है। इसी स्फुटज्ञान के आधार पर योगी त्रिकालज्ञ बनता है तथा सम्यक् दर्शन प्राप्त कर आत्मलाभ करता है। ऐसा नहीं हो सकता है कि किसी को आत्मज्ञान हो जाये और सृष्टि में कोई वस्तु ज्ञातव्य अवशिष्ट रह जाये।

योगी का लक्ष्य है कि वह ध्यान योग के द्वारा ऋतम्भरा व विवेकज्ञान को प्रकट कर ले। ध्यानयोग को छोड़कर और कोई बाह्य उपाय विवेकज्ञान का साक्षात्हेतु नहीं होता। शास्त्रश्रवण–पठन से जो ज्ञान–संस्कार उदित होता है। वह सामान्य ज्ञान कहलाता है। इससे उसे ऋतम्भरा ज्ञान को प्रकट करने की प्रबल प्रेरणा व बल मिलता है। यह बल ही उसका संवेग बनकर लक्ष्य तक पहुँचने के काल का निर्णायक बनता है।

आज का मनुष्य योग के यथार्थ स्वरूप को नहीं जानना चाहता वह चाहता है मुझे जल्दी से योग प्राप्त हो जाये फिर मैं अमुक अमुक कार्य सिद्ध करूँगा योग प्राप्त हो जाये तो मेरी सारी कामनायें पूर्ण हो जायेगी आदि–आदि। किन्तु होता इसके विपरीत है जब तक कामनायें रहती है तब तक मन की स्थिरता नहीं हो पाती है। गीता में भगवान ने **'स निश्चयेन योक्तव्यो योगी अनिर्विण्ण चेतसा'** अर्थात् योग का अभ्यास लम्बे समय तक धैर्ययुक्त मन से किया जाना चाहिये।

मनुष्य अपनी इच्छाओं के कारण ही अपने आप को स्वयं बांध लेता है। सांख्य सिद्धान्त के अनुसार प्रकृति (बुद्धि) स्वयं ही अपने को बांधती है और स्वयं ही मुक्त भी करती है। मानव बुद्धि में आठ भाव रहा करते हैं इनमें से अज्ञान, धर्म–अधर्म, वैराग्य–अवैराग्य, ऐश्वर्य–अनैश्वर्य से सात भाव रहने पर जीव का बन्धन होता है। किन्तु ज्ञान से प्रकृति स्वयं को मुक्त कर लेती है। ज्ञान की पराकाष्ठा तक पहुँचने का एक ही साधन है ध्यान योग। विवेक ज्ञान को ही सम्यक् ज्ञान कहा जाता है। विवेक का अर्थ है प्रकृति एवं पुरुष आत्मा के धर्मों को समझकर अज्ञान ग्रन्थि का भेदन करना। विवेक ज्ञान का मुख्य फल है– योगी को **'तारक ज्ञान'** कहा गया है। विवेकजज्ञान के माहात्म्य से योगी को अतीत–अनागत कालीन समस्त पदार्थों का यथार्थ रूप से युगपद् ज्ञान हो जाता है।

तारकं सर्व विषयं सर्वथाविषयमक्रम चेति विवेकजं ज्ञानम्' ऐसी अवस्था आ जाने पर योगी के लिये कोई वस्तु अज्ञेय नहीं रह जाती। विष्णु पुराण में सामान्य ज्ञानों को प्रदीप तुल्य तथा विवेकज्ञान को सूर्य के समान बतलाते हुये कहा है–

अन्ध तम इवाज्ञानं दीपवच्चेन्द्रियोद्‌भवम्'
यथा सूर्यस्तथा ज्ञानं यद्विप्रर्षे ! विवेकजम्।

हे विप्र ! अज्ञान घोर अन्धकार है। विषय–इन्द्रिय जन्य ज्ञान दीपक के समान है किन्तु विवेकजा ज्ञान अर्थात् जड़–चेतन का भिन्न–भिन्न प्रत्यक्षात्मक ज्ञान सूर्य के समान है। विवेकज्ञान प्राप्त हो जाने पर योगी समस्त जगत के पदार्थों का अधिष्ठाता–नियन्ता एवं ज्ञाता बन जाता है–

सत्वपुरुषान्यताख्याति मात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्व–सर्वज्ञातृत्वं च।

यो.द.३/४९

विवेकज्ञान प्राप्त योगी **'सर्वज्ञः क्षीणक्लेशः बन्धनो वशी विहरति'** विवेक ख्याति प्राप्त कर लेने पर योगी के अविद्यादि क्लेश आमूलक्षीण हो जाते है। बन्धन के टूट जाने पर सम्पूर्ण प्रकृति को अपने वश में किया हुआ सर्वज्ञ योगी सृष्टि में यत्तत्र सर्वत्र स्वच्छन्द बिहार करता है।

विवेक ज्ञान को प्राप्त करना ही मनुष्य का परम पुरुषार्थ है।

***

श्री प्रभुजी की सीवन प्रोग्राम की कुछ

चमत्कारिक घटनाऐं

सुभाष चन्द वर्मा, रिटायर्ड स्टेशन मास्टर

हम सब गुरू भाइयों को मालूम होनी चाहिए कि यह सीवन ग्राम जिला रायबरेली का प्रोग्राम वह प्रोग्राम है जिसको करने का स्वयं सद्गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज जी ने सीवन से लखनऊ के अन्तिम प्रोग्राम में आये हुए लोगों को सीवन में प्रोग्राम करने का वचन दिया था। इसके कुछ दिन बाद गुरूदेव जी ब्रह्मलीन हो गये। इस घटना के एक साल बाद सींवन ग्रामवासी कुछ लोग लखनऊ आये और स्वामी जी के सामने रो करके कहा— क्या गुरूदेव के दिये हुए वचन झूठे हो जायेंगे क्योंकि अब गुरूदेव जी तो रहे नहीं तो उनके दिये हुए सीवन के प्रोग्राम के वचनों की पूर्ति कौन करेगा और कैसी होगी। इसके उत्तर में स्वामी जी (ब्रह्मचारी श्री ओम प्रकाश जी महाराज) ने सीवन ग्रामवासियों को आश्वासन दिया कि गुरूदेव जी के दिए हुए वचन तीन काल में भी मिथ्या नहीं हो सकते, क्योंकि गुरूदेव स्वयं यदा–कदा कहा करते थे **''साधू वचन पलटे नहीं चाहे पलट जाय ब्रह्माण्ड''** अर्थात् साधू सन्तों के दिये हुए वचन कभी मिथ्या नहीं होते श्री स्वामी जी ने गुरूदेव के इस प्रकार के वचनों को सुनाकर उनको कहा कि तुम जाकर के प्रोग्राम की तैयारी करो ग्रामवासियों ने जो गुरूदेव जी इलाहाबाद से बसन्त पंचमी के बाद आकर लखनऊ का प्रोग्राम करते थे ठीक वही समय सीवन के प्रोग्राम का भी रखा और साथ ही यह भी कहा कि प्रोग्राम में रहने–ठहरने की व्यवस्था इलाहाबाद जैसी ही फूस की झोपड़ियों में ही होगी। इसके बाद भी स्वामी जी लखनऊ आश्रम से भी प्रभुजी व गुरूदेव जी के बड़े स्वरूपों को लेकर के प्रोग्राम की निर्धारित तिथियों में मोहन लाल जी को साथ में लेकर सीवन ग्राम पहुँच गये, वहाँ जाकर ग्रामवासियों के द्वारा अधूरे बने आश्रम में श्री प्रभुजी व गुरूदेव जी के स्वरूपों को विराजमान करके सीवन ग्रामवासियों से भी प्रभुजी व गुरूदेव जी के स्वरूपों की तरफ इशारा करके पूछा कि ये कौन है ? उसके उत्तर में ग्रामवासियों ने कहा कि ये श्री प्रभुजी है और ये गुरूदेव जी हैं इस पर स्वामी जी ने कहा कि ये गुरूदेव जी है कि नहीं ? गाँव वालों ने कहा कि हैं। तब स्वामी जी ने कहा कि ये गुरूदेव जी अपना प्रोग्राम करने को आये हैं और हम तो जैसे प्रोग्राम में गुरूदेव जी के साथ जाया करते थे उसी प्रकार यहाँ आये हैं। इस प्रकार सन् १९९२ ई० में श्री गुरूदेव जी के प्रोग्राम के दिये गये वचनों की पूर्ति हेतु सीवन के प्रोग्राम का शुभारम्भ हुआ।

अभी–अभी १६ फरवरी से २६ फरवरी १९९९ ई. में किये गये सीवन प्रोग्राम में आनन्द कन्द श्री प्रभुजी व गुरूदेव जी के द्वारा हुई कुछ चमत्कारिक घटनाएं निम्न प्रकार है—

पहली घटना—बिजली के करेन्ट से एक ब्राह्मण बालक की प्राण रक्षा व उसका पागलपन दूर होना।

द्वितीय घटना—आनन्द कन्द श्री प्रभुजी ने अपना भण्डारा स्वयं आरती करते हुए सन्तोष पाण्डे के मुंह से बोलकर करवाया।

तृतीय घटना—सद्गुरु देव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी योग विद्यालय के तीन कमरों का निर्माण आश्चर्य जनक ढंग से श्री प्रभुजी ने अपने ही भक्त को प्रेरणा देकर निर्माण कार्य तुरन्त प्रारम्भ कराया तथा साथ ही सीवन ग्राम में एक हॉस्पीटल बनाने का भी भक्त द्वारा संकल्प करवाया।

चतुर्थ घटना—रज प्रसाद से एक वृद्धा की आँखों की रोशनी मिली।

प्रथम घटना संक्षेप में इस प्रकार घटी—सीवन ग्राम के श्री गुरुदेव जी के द्वारा दीक्षित अर्जुन तिवारी के पुत्र अनिल कुमार तिवारी जो आठ–सात महीने से पागल था प्रोग्राम के समय इस लड़के की माता जी अपने लड़के के पागलपन की स्थिति से बेहद दुःखी थीं उन्होंने स्वामी जी के पास आकर अपने लड़के का सारा दुःखड़ा सुनाया और बच्चे को रज प्रसाद देने के लिए प्रार्थना की। स्वामी जी ने उस लड़के को बुलवाकर श्री प्रभुजी का नाम लेते हुए उसे रज का प्रसाद दिया और कहा कि वो कृपा करेंगे, वह लड़का रज प्रसाद खाकर प्रभु दरबार से बाहर निकला और अपने दोनों हाथों को ऊपर उठाते हुए बड़े जोश से प्रभु जी का जयकारा लगाया, जहाँ उसने जयकारा लगाया था ठीक उसके ऊपर टैम्परेरी बिजली का नंगा तार गया हुआ था उस लड़के के हाथ बिजली के तार से छू गये जिसके परिणाम स्वरूप उसे बिजली ने पकड़ लिया और वह लड़का बड़े जोर से चिल्लाने लगा प्रभु दरबार में बैठे ग्रामवासी लड़के के चिल्लाने की आवाज सुनकर बाहर दौड़कर गये और बिजली के तार से चिपके हुए लड़के को देखकर बिजली के तार को डण्डे और बांस मारकर तोड़ दिया बिजली से छूटकर वह लड़का जमीन पर गिर कर बेहोश हो गया ग्रामवासियों ने उसे पास ही में बनी झोपड़ी में ले जाकर उसे लिटा दिया डेढ़–दो घण्टे लेटने के बाद जब वह लड़का उठा तो देखने में आया कि वह पागलपने की बातें न करके समझदारी से बोल रहा है उसके बाद देखा गया कि उसका पागलपन पूरी तरह से समाप्त हो चुका था। वहाँ पर आये हुए दो–चार लोगों ने बतलाया कि पागलखाने में पागल व्यक्तियों को बिजली का शॉक देकर ठीक किया जाता है। यहाँ श्री प्रभु जी ने इस बिजली का करेन्ट लगाकर स्वयं ही ठीक कर दिया यही करेन्ट अगर थोड़ी देर और लगा रहता तो लड़का समाप्त हो सकता था लेकिन श्री प्रभु जी ने उसे उतना ही करेन्ट दिलवाया जितना उसके पागलपन को दूर करने के लिए आवश्यक था।

द्वितीय घटना संक्षेप में इस प्रकार घटी—इस बार किसानों की फसल प्राकृतिक प्रकोप से नष्ट होने के कारण प्रोग्राम में धन और अन्न का बहुत ही कम प्रबन्ध हो पाया था प्रोग्राम के प्रबन्धक सूर्य प्रसाद तिवारी ने स्वामी जी के पास आकर एकान्त में बताया कि इस बार भण्डारे का प्रबन्ध धनाभाव के कारण नहीं हो पाया है अतः आप भण्डारे के दिन केवल मात्र लाई का प्रसाद भण्डारे के नाम से लोगों को दें। स्वामी जी ने हंस कर कहा कि अगर तुम लोग भण्डारे का इन्तजाम नहीं कर सके हो तो कोई बात नहीं, जिनका यह प्रोग्राम है और भण्डारा होता है वह हमारे भी तो गुरुदेव हैं अतः अपने गुरुदेव का भण्डारा हम करेंगे, यह

सुनकर सूर्य प्रसाद तिवारी ने कहा कि अगर आप भण्डार करते हैं तो यह हम लोगों के लिए नक्कटाई की बात हो जायेगी। सूर्य प्रसाद तिवारी के जाने की थोड़ी देर बाद पुरासी ग्राम के निवासी ने स्वामी जी के पास आकर कहा कि बाहर लोग बातें कर रहे हैं कि इस बार भण्डारा नहीं होगा, भण्डारे के नाम पर केवल लाई का प्रसाद बाँटा जायेगा यह कहकर सन्तोष पाण्डे भाव विभोर होकर आँखों में आँसू भर कर बोला कि स्वामी जी यद्यपि हमारी हैसियत भण्डारा करने की नहीं है लेकिन फिर भी हम भण्डारा करेंगे यह सुनकर स्वामी जी ने कहा कि जब तुम्हारी हैसियत भण्डारा करने की नहीं है तो तुम कैसे भण्डारा करोगे, तब सन्तोष पाण्डे ने कहा कि आप के सीवन प्रोग्राम के एक हफ्ते पूर्व मैं अपने घर में श्री प्रभु जी की आरती कर रहा था तो एकाएक आरती करते हुए बड़े आवेश में मैं बड़े जोर–जोर से चिल्लाकर ऊपर हाथ उठाकर कहने लगा कि प्रोग्राम करने के लिए श्री प्रभुजी ने हमसे पहले ही कहलवा लिया था हमारे अन्दर से स्वयं जैसे प्रभुजी ही बोले हों कि प्रोग्राम हम करेंगे यह सुनकर स्वामी जी ने कहा कि ठीक है अब तुम्हीं जाकर के भण्डारे का इन्तजाम करो। सन्तोष पाण्डे तुरन्त सुशील तिवारी को साथ लेकर राय बरेली जाकर बैंक में जमा एफ.डी. आर. को भुनाकर पैसे लेकर शाम तक सीवन आ गया और हर वर्ष की तरह जैसे सीवन ग्राम के आस–पास सीवन से जुड़े बीस ग्रामों के लगभग पाँच–छ: हजार लोग श्री गुरूदेव जी के भण्डारे का प्रसाद ग्रहण किया करते थे प्रभु कृपा से उसी प्रकार से सभी लोगों को निमन्त्रण दिया गया और लगभग ५–६ हजार व्यक्तियों ने श्री प्रभुजी व गुरूदेव जी के नाम का जयकारे के साथ प्रसाद ग्रहण किया। इस घटना से यह बात हम सब के सामने आई कि वह करण कारण गुरूदेव अपना काम किस तरह से अपने बच्चों को प्रेरित करके करा लिया करते हैं।

तीसरी घटना संक्षेप में इस प्रकार घटी—सीवन ग्राम में १ जुलाई सन् १९९६ ई. से कक्षा १ से लेकर कक्षा १० तक योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के नाम से योग विद्यालय चल रहा है। विद्यालय का रजिस्ट्रेशन हो चुका है तथा स्थायी मान्यता के लिए कार्यवाही चल रही है सरकार की तरफ से २५ बाई ३० का एक कमरा तथा २५ बाई २० के दो कमरे व एक कमरा दफ्तर बना होने पर ही मान्यता मिलती है। सीवन प्रोग्राम में जाते हुए स्वामी जी ने अपने प्रिय शिष्य विमल अग्रवाल को सीवन प्रोग्राम में चलने को कहा था, इस पर विमल अग्रवाल ने कहा कि स्वामी जी मैं अभी तो आपके साथ नहीं चल सकूंगा ब्रहस्पतिवार को मारकेट बन्द रहता है उस दिन मैं स्वयं ही आ जाऊँगा। स्वामी जी से किये गये वादे के अनुसार गुरूवार को अपने प्रिय मित्र श्री कैलाश नाथ पटेल, श्री रामचन्द्र अग्रवाल व श्री मोहनलाल की धर्मपत्नी मंजू रानी को लेकर लखनऊ से ५–६ बजे चलकर प्रात: ९ बजे सीवन ग्राम में पहुँच गये थे। सीवन ग्राम का भण्डारा उसी दिन था। प्रोग्राम के बीच में सीवन से मोहन लाल अग्रवाल विशेषकर इनको लेने के लिए लखनऊ आये तो इन लोगों ने अपने जाने की मजबूरी बताकर सीवन जाने से मना कर दिया, न जाने का मुख्य कारण श्री पटेल जी का हाल ही में हुआ आपरेशन था पटेल जी ने कहा कि देहात में रास्ता ऊँचा–नीचा होने से गाड़ी में बैठने से झटके लगेंगे जिससे आपरेशन के टाके खुलने का डर है लेकिन मंजू

रानी ने गुरूवार के दिन लखनऊ आश्रम से पटेल जी व विमल अग्रवाल के घर सीवन चलने का फोन किया, प्रभु कृपा से ये दोनों लोग सीवन जाने को तैयार हो गये और इस प्रकार प्रभु प्रेरणा से प्रेरित होकर ये लोग सीवन पहुँचे, सीवन पहुँच कर इन लोगों ने वहाँ की गरीब जनता को देखा व साथ ही वहाँ की अभाव ग्रस्त विद्यालय की स्थिति का जायजा लिया। इसी बीच बातचीत के दौरान श्री स्वामी जी ने पटेल जी व विमल अग्रवाल को बताया कि विद्यालय के पास सरकारी मान्यता के अनुरूप एक भी भवन नहीं है जिसकी वजह से विद्यालय को सरकारी मान्यता नहीं मिल पा रही है यह सब सुनकर श्री पटेल जी ने व विमल अग्रवाल जी ने कहा कि स्वामजी जी आप इसकी चिन्ता न करें वह तीन कमरे मैं स्वयं बना कर यहाँ दूंगा। इसके तुरन्त बाद जौनपुर से आये पं. रामबोध व्यास जी ने श्री कैलाश नाथ पटेल, विमल अग्रवाल, रामचन्द्र अग्रवाल, मोहन लाल अग्रवाल व मन्जूरानी के द्वारा भूमि पूजन कराया गया व विद्यालय के भवनों की नींव खोदी गयी।

हम यहाँ थोड़ा–सा श्री पटेल जी का परिचय देना आवश्यक समझते हुए कहना चाहेंगे कि श्री पटेल जी की गणना राजाजी पुरम् लखनऊ में करोड़ पतियों में है श्री पटेल जी एक सद्ग्रहस्थ होकर के भी पूर्णतः सन्त हैं, ये परोपकारी व उदार प्रकृति के व्यक्ति हैं। उच्च कोटि के दानी व धर्मात्मा हैं। श्री पटेल जी पूज्य श्री सनातन स्वामी के कृपा पात्र भक्तों में से एक हैं जिनका विशाल आश्रम लखनऊ में कुर्सी रोड पर स्थित है।

चतुर्थ घटना का विवरण इस प्रकार है—राजपुर ग्राम से आने वाली एक स्वामी जी से दीक्षित वृद्धा ने स्वामी जी से कहा कि मुझे धुंधला–धुंधला दिखाई देता है साफ नहीं दिखाई देता इसके लिए मुझे आप प्रभु जी की रज का प्रसाद दें स्वामी जी ने कहा कि इसमें रज प्रसाद क्या करेगा किसी आँख वाले डाक्टर को जाकर अपनी आँख दिखाओ कहीं आँखों में मोतिया बिन्दु तो नहीं है इस पर वृद्धा ने कहा वह तो मैंने रायबरेली जाकर आँख के डाक्टर को दिखाया था उसने बतलाया कि आँखों में मोतिया बिन्दु नहीं है आँखों में डालने की दवा दी। जाओ इसे आँखों में डाला करो धुंध ठीक हो जायेगी। काफी दिना से मैं आँखों में दवा डाल रही हूँ लेकिन उससे कोई फर्क नहीं पड़ा मुझे तो आप रज का ही प्रसाद दे दो, स्वामी जी ने वृद्धा का रज प्रसाद पर अटूट विश्वास को देखकर उसे रज प्रसाद देते हुए कहा कि लो इस रज प्रसाद को थोड़ा–थोड़ा खा लिया करो और लगा लिया करो रज प्रसाद को लेकर वह वृद्धा अपने गाँव चली गयी, दूसरे दिन प्रातःकालीन सतसंग में वह वृद्धा आयी। आकर स्वामीजी जी को प्रणाम करते हुए कुछ भेंट दक्षिणा देकर बड़ी खुशी–खुशी बोली कि स्वामी जी मेरी आँख तो ठीक हो गयी मुझे अब साफ–साफ दिखाई देने लगा है। स्वामी जी ने उस वृद्धा से पूछा एक दम तुम्हारी आंख कैसे ठीक हो गयी तब उस भोली भाली देहाती वृद्धा ने बतलाया कि कल आप ने जो मुझे रज प्रसाद खाने और लगाने के लिए दिया था उसी से मेरी आँख ठीक हुई है उस रज प्रसाद को मैंने रात्रि को थोड़ा खा लिया था तथा थोड़ा रज प्रसाद आँखों में लगाकर मैं सो, गयी प्रातःकाल जब मैं उठी तो मुझे धुंधला–धुंधला न दिखाई देकर साफ–साफ दिखाई

दे रहा था यह अटूट श्रद्धा और अटल विश्वास का प्रत्यक्ष परिणाम है। इस घटना को पढ़ने वाले पाठक महोदयों से निवेदन है कि वह रज का उपयोग आँख में लगाकर न करें। क्योंकि यह श्रद्धा और विश्वास के आधार पर घटित घटना थी।

लीलाधारी श्री प्रभुजी की अद्‌भुत लीला

योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज योग विद्यालय में पढ़ने वाली कक्षा दस की छात्रा कु. कुसम जिसका सारा परिवार जयगुरूदेव बाबा का शिष्य है। सन् १९९८ के मार्च में होने वाले सीवन के प्रोग्राम में जब यह छात्रा कक्षा नवम् में इसी विद्यालय में पढ़ती थी। प्रोग्राम के समय दीक्षा लेने वाले लोगों को श्री स्वामीजी (ओमप्रकाश) द्वारा श्री प्रभुजी व गुरूदेव जी के स्वरूप व आरती की पुस्तक देते हुए, इस छात्रा ने देखा तो इस लड़की ने भी स्वामी जी से स्वरूप व आरती की पुस्तक लेने की प्रार्थना की। श्री स्वामीजी ने उस लड़की को समझाते हुए कहा कि "कि यह स्वरूप केवल दीक्षा लेने वाले लोगों को ही आरती पूजन के लिए दिए जाते हैं। सबको नहीं। इस पर उस छात्रा ने कहा कि हम भी इन फोटूओं की आरती, पूजन व ध्यान किया करेंगे। अत: आप हमको स्वरूप अवश्य दे दें। श्री स्वामी जी ने इस लड़की की श्रद्धा व विशेष आग्रह को देखते हुए श्री प्रभुजी व गुरूदेव जी के दोनों स्वरूप व आरती की पुस्तक देते हुए कहा कि नियम से इनकी आरती पूजन व भोग प्रसाद लगाया करना व ध्यान किया करना।

ॐ नमः शिवाय मंत्र का जाप किया करना। कु. कुसम को जैसा–जैसा श्री स्वामी जी ने बताया था स्वरूपों को मढ़वाकर आरती पूजन ध्यान जप नित्य करने लगी। कु. कुसम के माता–पिता ने कहा कि जब घर में एक जय गुरुदेव बाबा का स्वरूप है तो तू ये किन बाबाओं के स्वरूप को ले आई है। तुझसे जयगुरूदेव बाबा की आरती पूजन तो होता नहीं इनकी आरती पूजन करके तू तरेगी। तू सुबह शाम जिन बाबा की आरती पूजन व प्रार्थना करती है क्या ऐसा करने से तू पास हो जायेगी। हमने तो इन्हीं के शिष्यों से सुन रक्खा है कि ये दोनों बाबा तो ब्रह्मलीन हो चुके हैं तो इनकी आरती पूजन से तुझे क्या लाभ मिलेगा। हमारे गुरूदेव जयगुरूदेव बाबा तो मौजूद हैं उनसे कर प्रार्थना वह तेरी प्रार्थना को सुनेंगे। अपने आराध्य देव श्री प्रभुजी व गुरूदेव जी के विषय में माता–पिता द्वारा कहे गये इस प्रकार की बातों को सुनकर उसे हार्दिक दुःख हुआ और अपने कमरे में विराजमान अलमारी में श्री प्रभुजी व गुरूदेव के स्वरूपों के सामने जाकर वह लड़की बहुत रोई। उस बच्ची ने हमें बताया कि जैसे मेरे अन्दर से कोई बोल रहा है और कह रहा है कि कौन कहता है कि हम नहीं है तू आँख खोलकर गौर से हमारे स्वरूपों को देख। उस बच्ची ने आँख में भरे आंसुओं को पौंछकर ज्योंही श्री प्रभुजी व गुरूदेव जी के स्वरूपों को देखा तो देखकर आश्चर्य में पड़ गई कि श्री प्रभुजी व गुरुजी स्वरूप से बाहर निकलकर उसके सामने खड़े हुए हैं और कह रहे हैं कि देख हम है कि नहीं। यह सब खुली आंखों से प्रभुजी की लीला देखकर आनन्द में विभोर होकर अपने माँ–बाप को बुलाने के लिए दौड़कर गई और कहा कि चलकर देखो जिनको तुम कहते थे कि ये नहीं है

वह मेरे कमरे में दोनों खड़े हुए हैं। उस बच्ची के मां–बाप जैसे ही उसके कमरे में गए तो वहाँ कोई भी नहीं था केवल उसकी अलमारी में दोनों स्वरूप रक्खे हुए थे। बच्ची के माँ–बाप ने बच्ची को डाटते हुए कहा कि क्या तू पागल हो गई है जो इस प्रकार की अनहोनी बातें करती है। कहीं ऐसा भी हुआ करता है क्या ? जैसा कि तू कह रही है। लेकिन इस बच्ची का दावे के साथ कहना है कि कौन कहता है कि ये प्रभुजी व गुरूजी के फोटू हैं ये तो साक्षात प्रभुजी व गुरुजी हैं।

इसी बच्ची के साथ दूसरी घटना कुछ इस प्रकार से घटी। कु. कुसम इस वर्ष हाई स्कूल की प्राइवेट परीक्षा दे रही है। हाई स्कूल की प्रयोगात्मक परीक्षा दिलाने के लिए एक दिन उसके घर का कोई सदस्य नहीं था। उस बच्ची के बूढ़े ताऊ जिन्होंने योग विद्यालय के प्रधानाचार्य उमाशंकर तिवारी शास्त्रीजी को एक पत्र लिखकर बच्ची को पत्र देते हुए कहा कि वह शास्त्री जी तुम्हारा सब इन्तजाम ले जाने–आने का कर देंगे तुम यह पत्र उनको दे देना। कु. कुसम के ताऊ ने बताया कि जब मैं प्राइमरी स्कूल में प्राइमरी स्कूल में प्रधान अध्यापक था। तब मैंने शास्त्रीजी को पढ़ाया था। उस बच्ची ने सीवन विद्यालय में जाकर ताऊजी का पत्र शास्त्री जी को देकर कहा कि इसको आप पढ़ लें। शास्त्री जी पत्र को पढ़कर दूसरे दिन होने वाली प्रयोगात्मक परीक्षा उस छात्रा को दिलाने गाँव से दो कौस दूर पड़े सैन्टर पर ले गये। शास्त्रीजी परीक्षा दिलाकर वापस जब उस लड़की को उसके घर पर छोड़ने गये तो रात हो गई थी। और अधिक रात न हो जाय इस कारण से उस बच्ची को उसके दरवाजे पर ही छोड़कर शास्त्री जी जब सीवन को जाने लगे तो उस लड़की ने शास्त्री जी को थोड़ा चाय नास्ता करके फिर जाने के लिए कहा। शास्त्री जी ने कहा कि मुझे सीवन पहुँचना है यह सब करने कराने में बहुत रात हो जायेगी। यह सब फिर कभी फुर्सत में आयेंगे तब किया जायेगा। शास्त्री जी बिना कुछ जल पान किए चले गए इसका लड़की के मन पर दुःखद असर हुआ। और वह निराश होकर घर में जाकर श्री प्रभुजी की आरती पूजन करके बिन खाये पीये ही सो गई। प्रातः काल जब वह लगभग चार बजे सोकर उठी तो उठकर बाहर आकर मुंह हाथ धोकर कुल्ला करके जैसे ही वह अपने कमरे में अपनी चारपाई पर गई तो अपनी चारपाई पर श्री गुरुदेव जी को बैठा देखकर तथा साथ ही एक दुबले पतले धोती कुर्त्ता चश्मा लगाए हुए व्यक्ति को गुरूदेव जी के समक्ष हाथ जोड़े देखा तो आश्चर्य का ठिकाना न रहा। और वह गुरूदेव को प्रणाम करके कहने लगी कि इतनी सुबह मेरे दादा गुरूदेव आप किस प्रकार और कैसे यहाँ तक आए। इस पर गुरूदेव जी ने कहा कि तुम रात बिना भोजन किए रोते–रोते हमारा चिन्तन–मनन–स्मरण करती–करती सो गई थीं। इसलिए तुम्हें सान्त्वना देने के लिए हमको सुबह–सुबह आना पड़ा। हमारे भक्त दुःख संकट आने पर जब भी जहां भी हमें सच्चे हृदय से याद करते हैं हमें उनके दुःख संतप्त हृदय को शक्ति प्रदान करने के लिए आना पड़ता है। वह बच्ची गुरुदेव जी की यह सब बातें सुनकर तुरन्त अपनी माता जी को जगाने गई और मां को जगाकर कहा कि देखा ! मेरे कमरे में मेरे दादा गुरूदेव जी आए हुए हैं तुम जल्दी से उनके लिए कुछ जल पान बना दो। उस लड़की की माता

ने कहा कि घर में किवाड़ खुले नहीं कोई गाड़ी आदि आने की आहट हुई नहीं तो तेरे गुरूदेव घर में क्या ऊपर से टपक पड़े। चल चलकर देखूं कि कहां हैं तेरे गुरूदेव, माता–जब उस लड़की के कमरे में आई तो दिन निकल चुका था। वहाँ उसकी चारपाई खाली पड़ी थी उप पर कोई भी नहीं था इस दूसरी घटना से उस लड़की के माँ बाप ने पूरी तरह से जान लिया कि लड़की पूरी तरह से पागल हो चुकी है। तभी तो इस प्रकार की पागलपन की बातें करती है।

उस लड़की ने दूसरे दिन सीवन विद्यालय में जाकर इस घटना को जब शास्त्री जी को बताया तो उनको भी सुनकर महान आश्चर्य हुआ, साथ ही कहा कि तुम्हारे ऊपर तो प्रभुजी व गुरूदेव जी की पूर्ण कृपा है। इसके बाद शास्त्री जी ने लखनऊ जाकर श्री स्वामी जी को यह सब घटने वाली दोनों घटनाओं को सुनाया उस समय श्री स्वामजी जी के पास मैं भी बैठा था श्री स्वामीजी ने शास्त्रीजी को विद्यालय के शिलान्यास के समय खींची गई फोटूओं की एलबम देते हुए कहा कि यह एलबम इस लड़की को दिखाना और श्री गुरुदेव जी के साथ–हाथ जोड़े खड़ा जो दूसरा आदमी था वह कौन था इसकी जानकारी करना। उस लड़की ने कहा था कि वह व्यक्ति शिलान्यास के समय सीवन आये थे। शास्त्री जी एलबम लेकर सीवन पहुँच कर वह एलबम उस लड़की को दिखाया कि इनमें से कौन व्यक्ति हैं जो तुमने गुरुदेव जी के साथ देखा था। तो कु. कुसम ने श्री भुवनेन्द्र जी झा के स्वरूप को माथा झुकाकर प्रणाम करते हुए कहा कि यही महान पुरुष गुरुदवे जी के साथ में थे।

कु. कुसम ने इस वर्ष १६ फरवरी में होने वाली सीवन के प्रोग्राम में श्री स्वामी जी से बाकायदा गुरू दीक्षा लेकर अपने को धन्य धान्य किया।

कु. कुसम की इन चमत्कारिक घटनाओं को पढ़कर आनन्द कन्द श्री प्रभुजी की लीला कृपाओं से अपरचित पाठकों को लग सकता है कि यह सब मन घड़न्त बातें हैं कहीं ऐसा भी हो सकता है। इसका उत्तर यह है कि हो सकता नहीं अति श्रद्धालु भगवत भक्तों के साथ ऐसा होता है। मीराजी को राणा के द्वारा भेजा गया जहर जब अमृत बन सकता है। पिटारे में भेजा गया काले नाग में श्री कृष्ण का दर्शन हो सकता तो ऐसा भी हो सकता है। श्रद्धालु भक्तों ने पत्थर की मूर्ति में से भगवान को प्रकट किया है। यह अध्यात्म जगत भावनात्मक जगत है। श्रद्धा और विश्वास की दृढ़ता भावना का सुपरिणाम का नाम ही भावना है। प्रत्येक व्यक्ति विभिन भावनाओं का ही मूर्त मान रूप है। '**भावेहि विद्यते देव:**' के अनुसार दृढ़भावना के कारण ही बहुत सी असंभव बात प्रत्यक्ष में संभव देखी जाती हैं। कु. कुसम की अद्भुत घटना तादृश भावनाओं का ही सुपरिणाम कही जा सकती है। कहा भी है **''जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।''** और इन सबके अतिरिक्त सब कुछ करने की सामर्थ्य वाले अनादि सिद्ध श्री प्रभुजी के लिए तो कुछ भी करना असंभव नहीं है।

***

श्रीमती शकुन्तला पर कृपा

प्रेषकः—केशव देव उपाध्याय, वाराणसी

उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जनपद अन्तर्गत कछवाँ बाजार एक बड़ा कस्बा है। कछवाँ बाजार से सटा हुआ बरैनी एक ग्राम है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में योग प्रचार का कार्य इसी ग्राम के बाबू महेन्द्र नारायण सिंह को निमित्त बनाकर आराध्यदेव श्री सद्गुरु देव भगवान ने आरम्भ किया था। कई वर्षों तक बाबू महेन्द्र नारायण जी के घर पर निवास करके गुरूदेव भगवान ने योग प्रचार कार्यक्रम किया। प्रसंग इस प्रकार बना कि बाबू महेन्द्र नारायण एक असाध्य रोग के कारण जीवन से निराश हो चुके थे। डाक्टरों ने उनसे बतला दिया था कि अब वे कुछ ही दिनों के मेहमान हैं। जीवन के अन्तिम समय में पुण्य अर्जन हेतु संगम स्नान कर वे इलाहाबाद के माघ मेला में साधु—सन्यासियों एवं योगियों के कैम्प शिविर में इस नियत से घूम—घूम कर प्रणाम कर रहे थे कि हो सकता है कि किसी सिद्ध पुरुष की कृपा हो जाय और उनकी रोग निवृत्ति हो जाय। इसी क्रम में अचानक उनकी आंखे आराध्यदेव द्वारा संचालित योग शिविर 'श्री सिद्ध गुफा सवाई' पर आकर रुक गयीं, जिसमें लिखा था कि असाध्य रोगों की योग द्वारा निःशुल्क चिकित्सा। कैम्प के अन्दर प्रवेश कर इन्होंने सर्व समर्थ सिद्ध योगिराज श्री गुरुदेव भगवान के चरण कमलों का स्थूल दर्शन लाभ किया एवं अपना असाध्य रोग बताते हुए यह प्रार्थना किया कि हे महात्मन् ! क्या मैं भी रोग मुक्त हो जाऊंगा। उनके इस विनीत एवं आरत शब्दों को सुनकर आराध्यदेव गुरूदेव भगवान ने अपने मुखार बिन्दु से कहा कि लल्ला ! तुम अवश्य—अवश्य पूर्ण रूपेण ठीक हो जाओगे। इस प्रकार गुरूदेव के चरण कमलों के संरक्षण में रहकर उनकी आज्ञाओं का पालन कर ये पूर्ण स्वस्थ हो गये। श्री गुरूदेव भगवान ने उन्हें योग दीक्षा प्रदान की और वे अच्छे ध्यानाभ्यासी हो गये। योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्ध गुफा सवाई से प्रकाशित 'मेरी निजानुभूतियाँ' नामक किताब में, जो गुरुदेव भगवान के आदेश पर इन्होंने लिखा है से इनकी योगसिद्धि का सहज ही आभास हो जाता है।

अहं साधक का सबसे प्रबलतम शत्रु है एवं श्री गुरूदेव भगवान अपने साधनारत बच्चों का अहं जड़ सहित उखाड़ कर फेंक देते हैं, इसी के कारण योग प्रचार कार्यक्रम का यह स्थल बरैनी से हटकर कछवाँ बाजार के भूतपूर्व चेयरमैन बाबू स्वामी प्रसाद सिंह के घर पर पहुंच गया। श्री गुरुदेव भगवान के लीलावसान के वर्ष तक योग प्रचार प्रसार का स्थल यही रहा। इसी ग्राम से योग का प्रतिवर्ष श्री गुरुदेव भगवान द्वारा व्यापक प्रचार किया गया। श्रीमति शकुन्तला देवी जो हमारे वरिष्ठ गुरुभाई श्री उमाशंकर ऊमरवैश्य की धर्मपत्नी हैं के द्वारा भी यह योग प्रचार कार्यक्रम लगातार कई वर्षों तक लगातार छिप—छिप कर देखा गया। श्री उमाशंकर जी अपने जीविकोपार्जन हेतु मिर्जापुर जनपद में चले जाते थे एवं यह बच्चों को स्कूल भेजकर पूरे समय तक इस आध्यात्मिक योग प्रचार का आनन्द लेतीं।

''अतिस्य रगड़ करै तो कोई, अनल प्रकट चन्दन से होयी।''

उपरोक्त पंक्तियों के फलस्वरूप इनका योग एवं उसके व्याख्याता श्री सद्गुरुदेव भगवान के श्री चरणों में प्रेम उत्पन्न हो गया एवं उनके चरण कमलों में अनन्य श्रद्धा पैदा हो गयी। आज से करीब पैंतीस वर्ष पूर्व जब गुरूदेव भगवान योग प्रचारार्थ कछुवाँ पधारे तो इन्होंने अपने पतिदेव श्री उमाशंकर जी से प्रार्थना किया कि शास्त्रों में वर्णित विधानानुसार बिना दीक्षा लिए प्राणी को कोई पूजा पाठ का फल नहीं मिलता अतः हमारी इच्छा है कि योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से हम लोग भी योग दीक्षा ग्रहण कर लें। इनके पति ने स्वीकृति तो दे दी परन्तु कहा कि कोई अच्छा दिन देखकर दीक्षा ली जायेगी, अभी तो उनका प्रोग्राम एक हफ्ता चलेगा। इतना कहकर नैतिक कर्म से निवृत हो वे जीविकोपार्जन हेतु जनपद मिर्जापुर प्रातःकाल चले गये एवं मात्र दो घंटे बाद दीक्षा का सामान लेकर नौ बजे वापस आ गये एवं कहे कि चलो आज ही हम लोग दीक्षा ले लें। उन्होंने जाकर श्री गुरूदेव भगवान से दीक्षा की प्रार्थना की एवं उसी दिन इनकी विधिवत योग दीक्षा हो गयी दीक्षा प्राप्ति के बाद इस दम्पति ने गुरूदेव भगवान की आज्ञानुसार प्रातः सायं दोनों समय श्री गुरुदेव भगवान एवं महाप्रभु जी के स्वरूपों का विधिवत आरती पूजन करना आरम्भ कर दिया एवं प्रातःकाल पांच बजे से सात बजे तक मंत्र जप एवं उसके पश्चात ध्यानाभ्यास भी लगाना शुरू किया। जिसके फलस्वरूप इस परिवार के सभी कार्य सफल होते गये और आज भी हो रहे हैं।

इस दम्पत्ति को चार पुत्र क्रमशः श्री कृष्ण, श्री विजय बहादुर, श्री सच्चिदानन्द, श्री शिवानन्द एवं दो पुत्रियां जीतमड़ी देवी एवं सीतादेवी है। श्री कृष्णानन्द जी डाक्टर हैं और विजय बहादुर जी सरकारी विभाग में ऑडिटर हैं। इनकी पहली पुत्री का विवाह गुरूभाई श्री मानिकचन्द उमरवैश्य से हुआ है, जो गुरुदेव भगवान के विशेष कृपापात्र शिष्य हैं एवं इनकी दूसरी पुत्री का विवाह श्री हरिशंकर उमरवैश्य नामक लड़के से हुआ है। आज से करीब तीस वर्ष पूर्व जब इनकी दूसरी बच्ची की शादी तय हुयी उसी वर्ष इनकी पहली बच्ची श्रीमती जीतमड़ी देवी की तबियत कुछ ज्यादे ही खराब हुयी। इनके सिर में असहाय दर्द होना शुरू हुआ। अनेक प्रकार की दवाओं का सेवन कराया गया परन्तु सरदर्द घटने की बजाय बढ़ता ही गया। सरदर्द के कारण कभी–कभी यह बेहोश हो जाती थीं। और डाक्टरो ने घोषित कर दिया कि यह रोग लाइलाज है। इनके इस दर्द के कारण श्री उमाशंकर जी का पूरा परिवार दुःखी था। इस असहनीय दर्द एवं बेहोशी की हालत में ये कहती थीं 'अरे मइया, हे भाई जान गइल'। इनकी माता इनको संतोष देती और कहती कि दादा गुरूदेव को बुलावो वही ठीक कर सकते है हमने तो सारी दवाई कर ली परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। इन्होंने अपनी माता द्वारा बार–बार यह कहने पर कहा कि अच्छा अब हम दादा गुरूदेव से ही प्रार्थना करते हैं। इतना कहकर इन्होंने मंत्र जप करते हुए दादा गुरूदेव का स्मरण

एवं चिन्तन आरम्भ कर दिया। इनकी आंखे बन्द हो गयीं और इन्हें अकारण दयालु योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के दर्शन होने आरम्भ हो गये। श्री गड़ीमति जी ने प्रणाम किया एवं उन्होंने ध्यान में ही इनके सिर पर आशीर्वाद देने के लिए हाथ उठाया उसी समय इनका सरदर्द तत्काल ठीक हो गया। ये करीब दो घंटे तक ध्यान में रहीं और जब इनका ध्यान टूटा तो इन्होंने जब महाप्रभु जी की कृपा की बात बताना आरम्भ किया तो इनके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। एवं बीच–बीच में इनका कण्ठ अवरुद्ध हो जाता था। इन्होंने काफी एक–एक कर प्रभु का यह कृपा चरित्र सुनाया।

आज से करीब बाइस वर्ष पूर्व इनका प्रथम लड़का बबलू तिवारी उम्र इस समय मात्र दो साल थी। छत पर खेल रहा था। वह खेलते–खेलते छत के किनारे बारजा के पास पहुँच गया एवं नीचे झाँकने लगा कि अचानक जमीन पर आ गिरा। जमीन पर गिरने के साथ ही वह बेहोश हो गया। उसका डाक्टरी उपचार कराया गया लेकिन एक तो इतनी उम्र का छोटा बालक अपना कष्ट बताने में असमर्थ एवं उसके किस अंग में चोट लगी है ज्ञात नहीं हो पा रहा था। अतः डाक्टरों की सलाह पर बालक के पूरे शरीर का परिक्षण कराया गया जिसमें किसी प्रकार की चोट परिलक्षित नहीं हुई। डाक्टर ने बतलाया कि बालक डर के कारण बेहोश हो गया है इसे चोट बिल्कुल भी नहीं लगी है। इस प्रकार समर्थ गुरूदेव ने इस अबोध बच्चे की रक्षा की। श्री उमाशंकर उग्रवैश्य जी को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास था एवं सन् उन्नीस सौ छयानवें में उनका शरीरान्त हो गया। पति के शरीरान्त के बाद श्रीमति शकुन्तला देवी ने अपने जीवन का शेष समय सांसारिक कार्यों को छोड़कर पूजा पाठ एवं योग साधना, स्वाध्याय एवं आराध्यदेव के स्मरण चिन्तन में ही बिताने का निश्चय किया। उन्होंने अपना जीवन पूर्ण योगमय बना लिया। इसी साधना काल में एक मृत्यु दायक संस्कार में श्री प्रभु जी ने अलौकिक प्रकार से इनकी रक्षा की।

यह अकारण करूणा कृपा की घटना सन् उन्नीस सौ इक्यानवें की है। श्रीमति शकुन्तला देवी अपनी आँख का आपरेशन कराने अपने बड़े पुत्र श्री कृष्णानन्द जी के पास लखनऊ जा रही थीं। वे एक विक्रम टैम्पो में परिवार के अन्य सात सदस्यों के साथ सवार होकर अपने ग्राम कछवां से लखनऊ के लिए ट्रेन पकड़ने वाराणसी कैन्ट स्टेशन जा रही थीं। अभी टैम्पू मात्र एक किलो मीटर भी गया होगा कि दुर्घटनाग्रस्त हो गया। यह दुर्घटना इतनी भयंकर थी कि टैम्पू टूट–फूट गया एवं उसमें सवार सभी लोगों को काफी चोटें लगीं। इनमें सबसे खराब स्थिति शकुन्तला देवी की ही थी क्योंकि सबसे ज्यादा चोट उन्हीं को लगी थी। उनके पैर, पेट, दोनों, हाथ, सामने का चेहरा एवं मुंह में काफी चोट लगी थी एवं इनके शरीर के अंगों से काफी मात्रा में रक्त बाहर निकल गया था। नजदीक के प्राथमिक उपचार स्थल तक पहुँचने तक इनके शरीर के सभी अंगों से अनवरत खून बहता रहा। प्राथमिक उपचार

के बाद डाक्टर ने उन्हें किसी बड़े एवं अच्छे हॉसीटल में ले जाने की सलाह दी। परिवार के बाकी सदस्य प्राथमिक उपचार के बाद घर भेज दिये गये। घटनास्थल ग्राम के करीब ही था। अतः ग्राम के भी इनके परिवार एवं हितैषी लोग इकट्ठे हो गये थे। श्रीमती शकुन्तला देवी की हालत चिन्ताजनक थी।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय हॉस्पीटल यद्यपि उपचार हेतु उचित स्थल है परन्तु वहाँ बेकिंग में अत्यधिक समय लग जाता है इस परिस्थिति को जानकर इन्हें एक अत्याधुनिक प्राइवेट हॉसीटल में भरती कराया गया। इनको खून चढ़ाया गया एवं समुचित इलाज आरम्भ किया गया। आठवें दिन इन्हें होश आया, सात दिनों तक ये बेहोश मुर्दा की हालत में ही पड़ी रहीं। होश मे आने पर इन्होंने स्वयं अपने मुख से बतलाया कि बेटा ! दुर्घटना के बाद मुझे होश नहीं रहा एवं दुर्घटना के समय ही मैं अन्तर्मुखी हो गयी। आराध्यदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के दर्शन होने लगे एवं ऐसा स्पष्ट दर्शन इससे पूर्व हमने कभी नहीं किया था। हमने गुरुजी को प्रणाम किया और उन्होंने हमें आशीर्वाद दिया। उन्होंने मुस्कराते हुए कहा कि लल्ली ! मृत्यु का संस्कार था, कट गया वर्ना एक जन्म तुम्हें इसी कर्म के भुगतान के लिए लेना पड़ता। हमने प्रार्थना किया कि प्रभो। क्या अभी हमारा जन्म होना बाकी है। श्री प्रभु जी ने कहा कि लल्ली ! यदि तुमने अनवरत स्वाध्याय किया तो हो सकता है अगला जन्म न लेना पड़े वर्ना तुम्हें एक जन्म और लेना पड़ेगा। होश में आने पर इन्हें सांसारिक प्राणियों का बोध हुआ एवं यह कहने लगी कि हम बेहोश रहतीं तभी ठीक था। बराबर गुरूदेव भगवान के दर्शन तो हो रहे थे। इन्हें होश आने पर जहाँ परिवार के सदस्य एवं हितैषी जन प्रसन्न थे वहीं यह उदास थी क्योंकि इन्हें लगता था कि इनका कुछ छीन लिया गया है।

इस चरित्र को लिखते समय अनायास ही आराध्यदेव की योग परक बात का बारम्बार स्मरण हो रहा है। श्री गुरुदेव भगवान ने अपने मुखारबिन्दु से बतलाया था कि उनके छोटे गुरूभाई योगीराज श्री नरसिंह मूर्ति जी की एक शिष्या महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का एक छोटा स्वरूप लेकर कावेरी मठ के जगद्गुरू शंकराचार्य के पास गयी। उन्होंने शंकराचार्य को प्रणाम निवेदित करने के बाद महाप्रभु का स्वरूप निकालकर दिखलाया एवं उनसे पूछा कि क्या आप जानते हैं कि यह कौन है। कावेरी मठ के शंकराचार्य ने उनके हाथ में स्थित महाप्रभु जी के स्वरूप को हाथ जोड़कर प्रणाम किया एवं दो मिनट मौन रहकर कहा नारायण स्वयं। शिष्या ने फिर प्रश्न पूछा—शंकराचार्य जी इनकी आध्यात्मिक जगत में क्या शक्ति है ? शंकराचार्य जी ने कहा—बेटी ! इनकी शक्ति का अनुमान मुझे नहीं है। परन्तु तुम्हारे हाथ में जो स्वरूप है इस स्वरूप में यह शक्ति है कि यदि मरने वाले हजारों हजार लोगों को यह स्वरूप एक साथ दिखा दिया जाय तो सबको मोक्ष हो जायेगा। ऐसे सर्व समर्थ पूर्ण सिद्ध योगेश्वर के चरण कमलों में बारम्बार साष्टांग प्रणाम !

***

किमस्ति योगः

(विंशतिः श्रृंखला)

रचनाकार : **द्वारका प्रसाद शर्मा**, लखनऊ।

श्री सद्गुरुदेव की महती अनुकम्पा से भगवान श्री पतंजलि प्रणीत 'योगदर्शन' के सूत्रों का समाश्रय ले पूर्व की भांति छन्दोबद्ध श्लोकों की रचना के साथ–साथ प्रत्येक श्लोक के नीचे उसका भावानुवाद हिन्दी भाषा में प्रस्तुत करते हुए इस श्रृंखला की यह बीसवीं कड़ी है। मुझे विश्वास है कि जिज्ञासु एवं सुधी साधक वृन्द योग के परमगूढ़ तत्व का अनुशीलन करते हुए योग के सन्मार्ग में अनवरत प्रयासरत रहें तथा इस दुर्लभ मनुज जीवन को अर्थवत्ता प्रदान करें। हमारे परमाराध्य श्री सद्गुरुदेव के भी यही आदेश हम सब शिष्य समुदाय के निमित्त भी उनके प्रत्येक प्रवचन में रहे हैं। इसी क्रम को आगे बढ़ाते निम्नांकित तीन सूत्रों की यथोक्त रीति से व्याख्या प्रस्तुत लेख में की गई है।

—योगांगानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेक ख्यातेः।

—यम नियमासन् प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयोऽष्टावंगानि।

—अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्या परिग्रहा यमाः।

(१) न त्वा श्री गुरुपद पद्मयोः पुनरहं लब्ध्वा च तेषां कृपा,
ख्यातु श्री भगवत्स्वरूप ऋषिणोक्तानि सूत्राणि वै।
शास्त्रे दर्शन शास्त्र गहने गूढे च दिव्येऽमरे,
व्याख्यानाय समुद्यतः पुनरहं याचे गुरोरनुमतिम्।।

श्री गुरुचरण कमलों को नमन करता हुआ मैं उन्हीं के कृपा प्रसाद को प्राप्त कर भगवान पतंजलि के निबद्ध सूत्रों को जो अति गम्भीर व गूढ़ एवं दिव्य और अमर रूप में योग दर्शन शास्त्र में निहित हैं, उन्हीं सूत्रों की व्याख्या करने के लिये श्री सद्गुरुदेव की अनुमति की याचना कर रहा हूँ।

(२) सूत्रं नवं गृहीत्वाऽद्य, अधस्तालिखितं च यत्।
प्रारभे पूर्ववद् रीत्या, श्लोकपूर्वत्र भाषया।।

निम्नलिखित नये सूत्र को आज ग्रहण कर पूर्व की भांति पहले श्लोक उसके पश्चात् भाषा द्वारा अर्थ सहित इस क्रम को पुनः प्रारम्भ कर रहा हूँ।

सूत्रं तदर्थ सहितम्—

—योगांगानुष्ठादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः।

(३) योगांगानष्टसंख्याकान्, योगिनो ये प्रकुर्वते।
क्लेश स्वरूपां बुद्धिं ते, निघ्नन्ति विधिनाचरात्॥

अष्टांग योग को जो योगी जन किया करते हैं वे विधिवत् उसके अनुपालन व आचरण से क्लेशात्मिका बुद्धि का विनाश कर देते हैं।

(४) प्रणाश्य क्लिष्टां बुद्धिन्ते, ज्ञानालोकं भजन्ति ते।
ज्ञानालोकं ततस्तेषां, विवेकख्यातितांनयेत्॥

क्लेशरूप बुद्धि का विनाश कर लेने पर उनमें ज्ञान के प्रकाश का संचार हुआ करता है। ज्ञान के प्रकाश की वृद्धि ही तत्पश्चात् उनको विवेक ख्याति की ओर ले जाती है।

(५) योगाभ्यासो यावतो हि, वर्धते नितरां तथा।
तावतो वर्धते ज्ञानं, क्लेशोऽतितरते पुमान्॥

योग का अभ्यास जितना बढ़ता जाता है उतना ही ज्ञान का सम्वर्धन हुआ करता है। जिससे साधक क्लेश को पार करता रहता है।

(६) ज्ञानालोकेन तावद्धि, पुमान्नाप्नोति तां स्थितिम्।
ततस्तु लभते मनुजः, विवेकख्यातिकां स्थितिम्॥

ज्ञान के प्रकाश के संचार से साधक मनुष्य धीरे—धीरे विवेक ख्याति नाम की स्थिति पर प्रतिष्ठित हो जाया करता है।

(७) बुद्धीन्द्रियैरहकांरैः भिन्नं त्रीभिर्यदा पुमान्।
वीक्षते स्वात्मरूपं सः, योगी वाच्यस्तदा हिसः॥

बुद्धि, इन्द्रियों और अहंभावों इन तीनों से ही परे होकर जब मनुष्य स्वात्मभाव की स्थिति में प्रतिष्ठित रहता है, उस समय वह वास्तव में योगी कहलाने योग्य हो जाया करता है।

(८) यम नियमावासनं चैव, प्राणायामश्चतुर्थकः।
प्रत्याहारो धारणा च, ध्यानं समाधिरन्ति मः॥

(९) अष्टावंगानि योगस्य, मुनिना कथितानि वै।
कुर्वाणो विधिनैतानि, योगी भवति निश्चितम्॥

सूत्रं तदार्थ सहितम्—

—यम नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयोऽष्टावंगानि।

पातंजल योगशास्त्र में योग प्राप्ति निमित्त आठ अंगों का विवेचन किया गया है। अतएव अष्टांग योग से यह अभिहित है। आठ अंग क्रमश: है—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि। योगारूढ़ होने के लिये इन्हें जानना तथा उनका अनुपालन करना परमावश्यक है।

एतदनन्तरं विशदी क्रियते प्रत्येकमंग महर्षिणा सूत्राण्यपराणि विरचय्य प्रथमं तावत् यम:—

इसके पश्चात महर्षि पतंजलि ने अन्य सूत्रों का ग्रथन कर प्रत्येक अंग का विशदीकरण किया है। इनमें प्रथम **यम** है।

सूत्रं तदर्थसहितम्—

—अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमा:।

(१०) **यमाख्ये प्रथमे ह्यगे, पंच भेदा: प्रकीर्तिता:।**
अहिंसा प्रथमस्त्वावत्, द्वितीयं सत्यमेव हि।।

(११) **अस्तेय ब्रह्मचर्यो च, पंचमोऽस्त्य परिग्रह:।**
आरंभे ननु सर्वेषां, क्रमादेव विकत्थनम्।।

यम संज्ञक प्रथम अंग के पांच भेद किये गये हैं। वे हैं क्रमश: अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। अब इनकी प्रत्येक की व्याख्या क्रमश: की जा रही है।

(१२) **मनसा, वपुषा, वाचा, पीडनं नैव प्राणिनाम्।**
अहिंसा कथ्यते सैषा, प्रथमं यमलक्षणम्।।

मन से, शरीर से और वाणी से प्राणिमात्र को दु:ख या पीड़ा न पहुंचाना ही अहिंसा के अन्तर्गत आ जाता है।

(१३) **इन्द्रियैर्मनसा चैव, प्रत्यक्षं यत्कृतं भवेत्।**
अनुमानेनानुभूतं च, यथार्थं हितकरं च वाक्।
सत्यसंज्ञक माख्यातं द्वितीयं यमलक्षणम्।।

इन्द्रियों और मन के द्वारा प्रत्यक्ष होने से, अनुमान द्वारा अनुभव में आये वचन जो यथार्थ और हितकारक हों वे ही सत्य की कक्षा के अन्तर्गत हैं। यह यम का द्वितीय लक्षण है।

(१४) **पर द्रव्यापहरणं अन्यायेनार्थ संचयम्**
एवं विधानि कृत्यानि, नो कर्तव्यानि साधकै:।।
अस्तेय संज्ञमेतत्तु तृतीयं यमलक्षणम्।।

किसी अन्य व्यक्ति के धन का हरण करना, अन्यायपूर्वक धन का संग्रह करना और भी इसी प्रकार के गर्हित कार्य साधक मनुष्य को नहीं करने चाहिये। अस्तेय नाम से यम के अन्तर्गत यह तीसरा लक्षण है।

(१५) **मनसा वपुषा वाचा, वीर्यस्य परिरक्षणम्।**
सर्वास्वप्यवस्थासु, ब्रह्मचर्योऽभिधीयते॥

मन से, शरीर से और वाणी से सर्वथा सभी अवस्थाओं में वीर्य की रक्षा करना ही ब्रह्मचर्य कहलाता है।

(१६) **एतच्छक्यं भवेत्तावत्, साधको विरमो भवेत्।**
वर्जयेत्ताहशानर्थान्, कामोद्दीप्तिर्यतो भवेत्॥

यह तभी सम्भव है जब साधक कोई कामोद्दीपक विषयों का सर्वथा परित्याग कर दें।

(१७) **विरमेच्चापि तद्दृश्यैः न पठेच्छृणुयात्तथा।**
कामिनां कामिनीनां च, संगं दूरात् परित्यजेत्॥

ऐसे दृश्यों को न देखें, न पढ़े और न ही सुने। कामीजनों और कामिनियों के संग का भी परित्याग कर दें।

(१८) **स्वार्थाद्धेतोर्ममत्वाच्च, वस्तूनां सम्पदां चयम्।**
परिग्रह इति संज्ञोऽयं, वर्जनादपरिग्रहः॥

स्वार्थ के कारण या ममतावश भोगपरक वस्तुओं और सम्पत्तियों का संग्रह परिग्रह के अन्तर्गत है। इसके विपरीत इनका वर्जन करना अपरिग्रह कहलाता है।

(१९) **यम इति प्रथमेऽस्य, लक्षण उपलक्षणाः।**
पंचैते कथिताः सर्वे, प्रवक्ष्येऽग्रे क्रमात्पुनः॥

यम के अन्तर्गत पांच उप लक्षणों का वर्णन करने के पश्चात आगे आने वाले अन्य लक्षणों का वर्णन भी क्रम से इसी प्रकार आगामी अंक में किया जायेगा।

(२०) **पुनः सद् गुरोश्चरणौ नत्वा विरमाम्यहम्।**
सर्वं यत्समाख्यातं, चरणानुग्रह एवम्तत्॥

श्री सद् गुरुदेव चरणों को प्रणाम करते हुए मैं यहाँ विराम कर रहा हूँ। उपरिवर्णित समस्त चरणों का ही अनुग्रह है।

***

कर्मयोग

डा. स्वामी केशवाचार्य (गुजरात)

कर्मयोग की महिमा के बारे में क्या लिखा जाय। यह विस्तीर्ण मर्त्यलोक ही **''कर्मभूमि''** कहलाता है। यद्यपि यह भूमण्डल पूर्णत: योगभूमि है। ज्ञानभूमि और भक्ति भूमि भी है। तथापि इसे इन नामों से कोई सम्बोधित नहीं करता है। क्योंकि 'कर्म' इतना व्यापक है कि मन, बुद्धि और वाणी से भी जो क्रिया की जाती है, वह सब कर्म ही समझी जाती है। और ज्ञानयोग, भक्तियोग आदि की साधना के लिए भी किसी न किसी प्रकार के कर्मयोग की ही आवश्यकता रहती है। कर्मयोग की महिमा राजर्षि भर्तृहरि के वचनों से अच्छी तरह प्रकट हो जाती है। यथा–

''नमस्यामो देवान नुहत विधेस्तेऽपि वशगा विधिर्वन्द्य: सोऽपि–

प्रति नियत कर्मैक फलद:।

फलं कर्मायत्तं किममरगणै: किं च विधिना नमस्तत्कर्मभ्यो–**विधिरपि न येभ्य: प्रभवति।।''**

हम देवताओं को नमस्कार करते हैं परन्तु उन्हें विधाता के वश में देखते हैं। इसलिए विधाता ही को नमस्कार करते हैं, परन्तु विधाता भी हमारे पूर्वनिश्चित कर्म के अनुसार फल देता है। फिर जब फल और विधाता दोनों कर्म के अधीन हैं तो देवता और विधाता से क्या काम है ? अतएव जिस कर्म पर विधाता का भी कोई वश न चलता उस कर्म को ही नमस्कार है। अस्तु, इस लेख में मुख्यत: तुलसी कृत रामायण के आधार पर थोड़ा सा कर्म पर विचार किया जा रहा है।

पहले यह देखना चाहिये कि 'कर्म' शब्द का अर्थ क्या है ? जन साधारण में इस शब्द का प्रयोग भिन्न–भिन्न अर्थों में किया जाता है–क्रिया, कार्य अथवा काम काज के अर्थ में और भाग्य अथवा तकदीर के अर्थ में भी। रामायण में इस शब्द का प्रयोग अधिकांश में तो करनी, करतूत, व्यापार कार्य, हलचल आदि के अर्थों में ही किया गया है। परन्तु कहीं–कहीं लोकरूढ़ि के अनुसार 'भाग्य या तकदीर' के अर्थ में भी किया गया है।

नित्य के व्यवहार में देखा जाय 'कर्म रेख' शब्द का अर्थ 'प्रारब्ध का लेख' लिया जाता है। और कर्म भोग का अर्थ 'प्रारब्ध का भोग' अथवा 'पुराकृत कर्म से उत्पन्न फलों का भोग लिया जाता है। 'कर्महीन' का अर्थ 'दूषित भाग्य वाला' अथवा 'बदनसीब' और कर्म फूटना का तात्पर्य 'भाग्य फूटना' समझा जाता है। तात्पर्य यह है कि व्यवहार में कर्म का अर्थ करनी, क्रिया अथवा व्यापार माना जाता है। और प्रारब्ध अथवा भाग्य भी। तब, क्या दोनों अर्थ ठीक है ?

व्युत्पत्ति शास्त्र की दृष्टि से देखें तो 'कर्म' शब्द का केवल एक सरल और सीधा निश्चित अर्थ हो सकता है। 'कर्म' शब्द 'कृ' धातु (करना) से बना है। अतएव इसका अर्थ 'करनी, करतूत, व्यापार, क्रिया, हलचल या कार्य ही हो सकता है। और कुछ नहीं। परन्तु अनेक त्रिकाल द्रष्टा ऋषिमुनियों को उत्पन्न करने

वाली प्राचीन हिन्दू जाति का दर्शन शास्त्र केवल इस अर्थ से सन्तुष्ट नहीं होता। वह पुनर्जन्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त को अनादि काल से मानता है। इसका प्रतिपादन डंके की चोट पर करता है। और केवल वर्तमान जन्म को प्रथम अवस्था या प्रथम योनि कदापि नहीं मानता। इन कारणों से दर्शन शास्त्रों का अटल मत है कि कर्म के साथ उसका अच्छा बुरा फल और कर्ता के साथ उसके कर्मों का भोग अथवा बन्धन भी अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है। गोस्वामी तुलसी दास जी ने बड़े–बड़े गहन दार्शनिक सिद्धान्तों को दो–तीन सरल वाक्यों में समझाने का प्रयत्न किया है–

'कर्म प्रधान विश्व करिराखा।
जो जस करइ सो तसफल चाखा।।
और– काहू न कोऊ दुःख सुख कर दाता।
निज कृत कर्म भोग सब भ्राता।।
और– सुभ अरु असुभ कर्म अनुहारी।
ईस देइ फल हृदय विचारी।।
करइ जो कर्म पाव फल सोई।
निगम नीति अस कह सब कोई।।

भाव यह कि 'करना' (कर्म) के साथ 'भोगना' (फलभोग–या कर्मविपाक) भी उसी तरह अनिवार्य रूप से लगा हुआ है, जैसे–वृक्ष के साथ छाया, जन्म के साथ मृत्यु और सूर्य के साथ गर्मी। यदि हम इस बात को ठीक–ठीक समझ जायें तो कर्म शब्द के अर्थ को भी ठीक–ठीक समझ सकते हैं। और यह भी समझ सकते हैं कि हमारे दर्शनिकों ने कर्म के तीन विभाग (प्रारब्ध, सञ्चित और क्रियमाण) क्योंकर किये हैं। इन विभागों पर आगे चलकर कुछ विचार किया जाएगा। यहाँ केवल यह निवेदन करना चाहता हूँ कि मनुष्य के पूर्व कर्मों (करनी) के फल स्वरूप उसके प्रारब्ध या भाग्य का निर्माण होता है। तब भाग्य हमारे कर्म का केवल एक अंग है। यही कारण है कि जहाँ व्युत्पत्ति शास्त्र की दृष्टि से इसका अर्थ व्यवहार में प्रसंगानुसार कहीं–कहीं भाग्य या प्रारब्ध भी लिया जाता है। प्रायः 'कर्म' शब्द का अर्थ शास्त्र विहित अथवा धर्म सम्मत कर्म माना जाता है। अर्थात् वर्णाश्रम कर्म (विद्यादान, युद्ध, वाणिज्य, और सेवा, अथवा ब्रह्मचर्य, प्रजोत्पादन, साधना और अनासक्ति) ही कर्म के अन्तर्गत आ सकते हैं। परन्तु स्वर्गीय श्री लोकमान्य तिलक जी इसे संकुचित अर्थ समझते हैं–गीता जी के उद्देश्य को ध्यान में रखकर उनका विचार है कि इस शब्द का अर्थ अधिक व्यापक रूप में लिया जाना चाहिये। इसलिये वे कहते हैं कि मनुष्य जो कुछ करता है–जैसे खाना, पीना, रहना, उठना, बैठना, श्वासोच्छवास करना, हंसना, खेलना, रोना, देखना, बोलना, सुनना, चलना, लेना–देना, आज्ञा और निषेध करना दान देना, यज्ञ–योग करना, खेती, व्यापार धन्धा, इच्छा करना, निश्चय करना, चुप रहना, इत्यादि –इत्यादि ये सब भगवद्गीता जी के अनुसार 'कर्म' ही है। चाहे वे कायिक हों, वाचिक हों अथवा मानसिक हों। मानवी कर्म मूलतः दो प्रकार के होते है–(१) उचित कर्म, पुण्य कर्म, कर्तव्य

कर्म, शुभ कर्म, अथवा धर्म और (२) अनुचित कर्म, पाप कर्म, त्याज्य कर्म, अशुभ कर्म अथवा अधर्म। मनुष्य सारे कर्म सुख की प्राप्ति, दुःख की निवृति, शान्ति और आत्मोद्धार के लिए करता है। कष्ट पाने, पछताने और अपना अहित करने के लिए नहीं। जो मनुष्य जानबूझकर पछताने और कष्ट पाने के लिए कोई कर्म करता है, वह मनुष्य कैसे समझा जाय। जिस कर्म का अन्तिम और निश्चित परिणाम अटल सुख, स्थायी शक्ति और आत्मा का आनन्द हो वह उचित कर्म है। जिसका निश्चित फल खेद, अनिवार्य दुःख और यन्त्रणा हो वह अनुचित कर्म है।

पूर्व जन्मों और वर्तमान जन्मों की भिन्न दृष्टि से 'कर्म' तीन भागों में बांटा गया है—**प्रारब्ध, संचित** और **क्रयमान**। यह वेदान्त की दृष्टि है। एतएव ऊपर लिखे अन्य सब भेदों पर कुछ विवेचन कर रहा हूँ। इन भेदों को समझे बिना कर्म योग मार्ग के पथिक को बड़ी–बड़ी विघ्न बाधाओं का सामना करना पड़ता है। इन तीनों कर्मों के विशद विवेचन से अर्थ समझा जा सकता है, कि—कर्म क्या है।

सञ्चितकर्मः— 'किसी मनुष्य के द्वारा इस क्षण तक किया गया जो कर्म है—चाहे वह इस जन्म में किया गया हो या किसी पूर्व जन्म में—वह सब 'सञ्चित' अर्थात् 'एकत्रित' कर्म कहा जाता है। इस 'सञ्चित' का दूसरा नाम 'अदृष्ट' और मीमांसकों की परिभाषा में 'अपूर्व' भी है। अब तक के सभी कर्मों के परिणामों के संग्रह को अथवा सब सञ्चित कर्मों को एकदम भोगना असम्भव है, क्योंकि इनके परिणामों में कुछ परस्पर विरोधी अर्थात् भले और बुरे (स्वर्गप्रद और नरकप्रद) दोनों प्रकार के फल देने वाले हो सकते हैं। इसलिए इन दोनों के फलों को एक ही समय भोगना सम्भव नहीं है। इन्हें एक के बाद एक भोगना पड़ता है।

प्रारब्धकर्मः— ऊपर बतलाया गया है कि अब तक के किये गये समस्त 'सञ्चित' कर्मों के फल को एक के बाद एक भोगना पड़ता है। अतएव 'सञ्चित' में से जितने कर्मों के फलों का भोग पहले शुरू होता है। उतने ही को प्रारब्ध अर्थात् आरम्भित 'सञ्चित' कहते हैं। व्यवहार में 'सञ्चित' के अर्थ में ही प्रारब्ध शब्द का बहुधा उपयोग किया जाता है। परन्तु यह भूल है। शास्त्र दृष्टि से यही प्रकट होता है कि सञ्चित के अर्थात् समस्त भूतपूर्व कर्मों के संग्रह के एक छोटे भेद को ही 'प्रारब्ध' कहते हैं। इसका दूसरा नाम आरब्ध कर्म भी है।

क्रियमान कर्मः— यह कर्म का तीसरा भेद है। जो कर्म अभी हो रहा है। अथवा जो कर्म सकाम भाव से अभी किया जा रहा है। उसकी गणना क्रियमाण में होती है। इस शब्द का उपयोग प्रचलित, चालू अथवा वर्तमान काल वाचक कर्म के लिए होता है। यह क्रियमान ही तुरन्त सञ्चित बनता है। अभी तक हमने यह समझने का प्रयत्न किया है कि सञ्चित, प्रारब्ध और क्रियमाण कर्म किसे कहते हैं। अब थोड़ा सा यह भी देखना चाहिये कि कर्तव्य कर्म सदाचार और लोक धर्म क्या है और अकर्तव्य कर्म दुराचार और अधर्म क्या है ?

कौन–कौन से कर्म उचित और विहित हैं और कौन कौन से अनुचित तथा त्याज्य हैं। इसके लिए शास्त्र को प्रमाण माने बिना काम नहीं चलता। शास्त्रों और धर्म ग्रन्थों में सदाचार और लोक धर्म के विधान भरे पड़े है। और दुराचार तथा अधर्म की भी यथेष्ट मीमांसा कर दी गयी है। धर्म और अधर्म का निर्णय सच्चे सन्त

हीं कर सकते हैं। अस्तु, सन्मार्ग में जाने से उत्तम परिणाम अवश्य होता है। और कुमार्ग में चलने से बुरा परिणाम हुए बिना नहीं रहता है। यथा—**नहि विष बेलि अमिअ—फल फरहीं।** बुरे कामों में हाथ डालने से दण्ड तो जब मिलना होगा तभी मिलेगा, परन्तु तेज, बल और बुद्धि का ह्रास तो उसी समय हो जाता है। जैसे—श्री सीता हरण के समय यति वेष धारी रावण की दशा हुई—

जाके डर सुर—असुर डेराहीं।
निसि न नींद दिन अन्न न खाहीं।।

सो दससीस स्वान की नाईं।
इत उत चितई चला भड़िहाई।।

इमि कुपंथ पग देत खगेसा।
रह न तेज—बल—बुद्धि लव लेसा।।

।। अरण्यकाण्ड।।

यह बात नहीं है कि केवल जान—बूझकर दुराचरण करने से ही बुरा परिणाम भोगना पड़ता है, अनजान में भी बुरा कर्म करने से बुरा फल भोगना पड़ता है। जैसे अग्नि पर जान बूझ कर हाथ रखने से हाथ अवश्य जलता है। 'जो दुर्बुद्धि पुरुष अज्ञान से विष पीकर उसे नहीं जानता, वह उसके परिणाम के अन्त में कर्म के फल को जानता है—

यो हि मोहाद्विषं पीत्वा नावगच्छति दुर्मतिः।
स तस्य परिणामान्ते जानीते कर्मणः फलम्।।

(वाल्मीकि रामायण: उत्तर काण्ड)

तात्पर्य यह कि कभी—कभी हमें ऐसे दण्ड भी भोगने पड़ते हैं जिनके कारणों का हमें पता ही नहीं लगता। अपने अपने कर्तव्य पथ पर अटल रहना चाहिये। कायरता और आलस्य छोड़ देना चाहिये। बुरे कर्मों की ओर भूल कर भी प्रवृत्ति नहीं होना चाहिये। अच्छे कर्म करना चाहिये, परन्तु फल की आशा से नहीं। निष्काम भाव से, ईश्वरार्पण बुद्धि से, कर्ता भाव छोड़कर कर्तापन के वृथाभिमान को छोड़ देना चाहिये। यह वृथाभिमान ही जीव को बद्ध और भोक्ता बनाता है। आसक्ति को ज्ञानाग्नि से जला देना चाहिये। बस फिर सुख ही सुख है पूर्ण शान्ति ही शान्ति है। जैसे श्री सन्त कबीर दास जी 'कर्ता भाव और भोक्त भाव' से किस प्रकार सफाई से निकल जाते हैं। वे कहते हैं कि —

'जो कुछ किया सो हरि किया, मैं कछु कीया नाहि।

सन्त कबीर दास जी खुलकर परमात्मा से कहते हैं कि तुम्हीं तो मेरे ह्रदय के प्रेरक हो। मैंने जो कुछ किया सब तुम्हारी प्रेरणा से—तुम जानो, तुम्हारा काम जाने। इस तरह के अभ्यास से (केवल वार्ता से नहीं) कर्मयोग करना चाहिये। शुद्ध कर्मयोग परमावश्यक है।

***

योग सिद्धि हेतु कैसे करें ध्यान ?

लेखक—जयनारायण (लखनऊ)

देव दुर्लभ मानव—योनि को हमारे शास्त्रों ने सर्वश्रेष्ठ इसी लिये बताया है कि मनुष्य पुरुषार्थ से स्वयं ही अपने भाग्य का निर्माण करने में स्वतन्त्र है। मनुष्य की सभी योनियां योग योनियां हैं, वे केवल योगों को भोगने के लिये मिली हैं। सत्कर्मों की साधना से यह मानव, नर से नारायण की पदवी तक पहुंच जाता है। कल्याण कामी—मानव को सत्कर्म में प्रवृत रहने का दृढ़ निश्चय करना चाहिये। संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं है, जो मनुष्य के लिये असंभव है। निश्चय की दृढ़ता के लिये सर्वोत्तम साधन सत्संग है।

जीवन को साधनमय बनाने के लिये मन को भोगों की आसक्ति (वासना) से विरत रखना परमावश्यक है। जितना ही मन भजन व संकीर्तन तथा धारणा के कारण विरक्त एवं निरभिमान होता जाता है, उतना ही ध्यान का मार्ग प्रशक्त होता जाता है। ध्यान के साधन को सुगम बनाने के लिये साधक को ब्रह्म मुहूर्त में शैय्या त्याग कर शौच आदि से निवृत्त होकर आसन व्यायाम करना चाहिये। आलस्य के विक्षेप से बचने के लिये "युक्ताहार विहार" के नियम का पालन करना परमावश्यक है। स्वच्छ, शुद्ध और पवित्र स्थान पर मुलायम आसन बिछा कर उस पर पूर्वाभिमुखी अथवा उत्तराभिमुखी होकर साधक बैठें। किसी भी आसन में बैठे, किन्तु प्रत्येक आसन में मेरुदण्ड का सीधा रहना आवश्यक है। इससे यह लाभ है कि मन वश में हो जाता है, ब्रह्मचर्य—पालन में सहायक होता है और वृद्धावस्था शीघ्र नहीं आती है। साधक अपनी सभी बाह्य वृत्तियों को समेट कर अन्तर्मुखी बनाये, जिससे मन एकाग्र हो जाये। जब भी मन बाह्य वृत्तियों में उलझे, उस समय मन को समझायें कि मूढ़ मन ! हर समय तो तू सांसारिक प्रपंच में ही फंसा रहता है, इस समय तू सब कुछ भूल कर भगवान के चरणों में लग जा क्योंकि दुविधा में तेरे हाथ कुछ भी नहीं लगेगा। आसन पर बैठकर नित्य के ऐसे अभ्यास से साधक का मन अवश्य ही ध्यानारूढ़ होगा। चंचल मन में कारण साधक को अन्तर्मुखी होने में बार—बार कठिनाई उठानी पड़ती है। इसी से अर्जुन ने भी भगवान श्री कृष्ण से चंचल मन के सम्बन्ध में शंका व्यक्त की कि—

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।

भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन का समाधान करते हुये कहा—

आशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।

अर्थात् निस्सन्देह यह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है, परन्तु अभ्यास अर्थात् स्थिति

के लिये बारम्बार प्रयत्नशील रहने से और वैराग्य से वश में हो जाता है। इसको अवश्य वश में करना चाहिये। सारा खेल मनुष्य के दृढ़ निश्चय और पुरुषार्थ का है, जो उस नर से नारायण की पदवी तक पहुँचा देता है। मन को वश में करने के लिये, प्राणों का संचार भी सम्यक् रूप से होना आवश्यक है। मन और प्राण का सम्बन्ध ऐसा ही है जैसे मोटर और ड्राइवर का। प्राणों का सम्यक् संचार प्राणायाम के अभ्यास से होने लगता है। धारणा ध्यान करने के प्रारम्भ में प्राणायाम कर लेना आवश्यक है। श्री मद्भगवद्गीता में भी ऐसा आदेश है:-

स्पर्शान्कृत्वा वहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवो:।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तर चारिणौ॥

अर्थात्—बाह्य विषयों का चिन्तन न करता हुआ, बाहर ही त्याग कर और नेत्रों की दृष्टि को भृकुटी के मध्य में स्थिर करके, नासिका में विचरने वाले प्राण और अपान वायु को सम करे। इस प्रकार प्राणों के वश में होने से मन भी स्वतः वश में हो जाता है। प्राणायाम एवं धरणा—ध्यान में मेरूदण्ड का सीधा रहना आवश्यक है।

सत—रज—तम गुणों का प्रभाव मन पर पड़ता है। अतः जिस समय जो गुण प्रभावशाली हो, उस समय उसी गुण के अनुरूप ध्यान का रूपक बनाना चाहिये। ब्रह्ममुहूर्त में सतगुण प्रबल होता है, उस समय मानसिक जाप के लिये ध्यान—साधना उपयुक्त है। रजोगुण की अवस्था में उपांशु जप और तमोगुण की अवस्था में संकीर्तन एवं वैराग्यपूर्ण पदों का गायन उत्तम होता है। मन पर नियन्त्रण रखने के लिये समय—समय पर मन का निरीक्षण करना परमावश्यक है। मन के निरीक्षण करने से साधक बीसों वर्ष माला जपते और ध्यान लगाते चले जाते हैं। किन्तु मन को वश में न करने से उनकी साधना अधूरी ही रह जाती है। अभ्यास और वैराग्य की भावना के जागरूक रहने से यह असम्भव कार्य भी सम्भव बन जाता है। साधारण मानव से असाधारण स्थिति तक पहुंचने वाले महापुरुषों का इतिहास संकेत करता है कि उन्होंने सदैव अपने अवगुणों पर ही दृष्टि रखी। आत्मनिरीक्षण के माध्यम से उन अवगुणों को दूर कर उन्होंने सद्गुणों को ग्रहण कर अपने साधना—पथ को आगे बढ़ाया। साधक को चाहिये कि वे अपने डायरी में नित्य क्रियायें अवगुणों को नोट करें तथा इसे देखते रहें तो सफलता का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

ध्यान के साधना—पथ पर अग्रसर होने के लिये साधक को अपनी नियमित दिनचर्या अवश्य बनानी चाहिये। निश्चित कार्यक्रम होने से साधना में व्यवधान नहीं होता है और समय का सदुपयोग हो जाता है। प्रत्येक साधक को ध्यान के प्रारम्भिक काल में और बाद में भी मानस पटल पर नित्य प्रतिदिन की घटनाओं का दृश्य सिनेमा के रील की भांति दिखाई देता रहता है। यदि साधक सजग रहता है तो वह तुरन्त अपना ध्यान इष्ट पर केन्द्रित करने का प्रयास करता है। जिस साधक की अटूट श्रद्धा सद्गुरु या परमात्मा में निहित रहती है, उस पर सिद्धों की कृपा होने से ध्यान का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। इस प्रकार साधक का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह मन को निर्विषय करे— **ध्यान निर्विषयं मन:**। क्योंकि मानस पटल पर ऐसे अनेकों संसार

भरे हुए होते हैं उन्हें हटाना ही ध्यान है। विषयों से मन को हटाने का नाम ही वैराग्य है। और उस निर्विषय मन को इष्ट या भगवान में लगाने का नाम अभ्यास है। जब कभी साधक को ध्यान के समय मानसिक जाप में अड़चन का अनुभव हो, उस समय उसे संकीर्तन के माध्यम से "राम कृष्ण हरि" या सद्गुरु की पुकार जोरों से करनी चाहिये। उससे हृदय करुणा से भाव विभोर हो उठेगा और ध्यान का मार्ग निर्विघ्न हो जायेगा।

साकार का ध्यान सुगम होता है क्योंकि देहाभिमान के कारण निराकार का ध्यान संभव नहीं होता है। गीता में इस बात का स्पष्ट संकेत मिलता है—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषा मय्यासक्त चेतसाम्।

अर्थात्— देहाभिमान के रहते निराकार का ध्यान होना दुस्तर है। ध्यान में भाव प्रधान है। जिसमें मन को सुख की प्राप्ति होती है।, उसी वस्तु का स्मरण मन सदैव करता रहता है। इसलिये साधक को अपने इष्ट में ध्यान—सुख का भाव रखना चाहिये।

कामनायें साधक के निर्विघ्न ध्यान में बाधक होती हैं। श्री कृष्ण भगवान ने गीता में साधना की सफलता के लिये ऐसा ही आदेश दिया है—

संकल्पप्रभवान् कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषत:।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्तत: ॥ ६/२४

अर्थात्—संकल्प से उत्पन्न होने वाली सम्पूर्ण कामनाओं की नि:शेषता से अर्थात् वासना और आसक्ति का त्याग और मन के द्वारा इन्द्रियों के समुदाय को सब ओर से ही अच्छी प्रकार वश में करें। इस प्रकार मन को कामना रहित बनाना ही सद्गुरु। परमात्मा को प्राप्त करने की कुंजी है। मन को अन्तर्मुखी बनाने का यही एकमात्र उपाय है। बहिर्मुखी वृत्तियों से आनन्द का द्वार बन्द हो जाता है और अन्तर्मुखी वृत्तियों से वह द्वार बड़ी सरलता से खुल जाता है।

ध्यान के समय साधक को अपने शरीर का विस्मरण करना परमावश्यक है। संसार का अंश शरीर है, शरीर नाशवान है, आत्मा (मैं) चेतन और अविनाशी है। इसलिये शरीर से आत्मा (मैं) का कोई सम्बन्ध नहीं है। क्योंकि सजातीय से सजातीय का सम्बन्ध स्थायी होती है, जैसे दूध पानी में मिलाया जा सकता है किन्तु पत्थर नहीं मिलाया जा सकता है। अत: साधक को इष्ट में अपने को लय कर तद्रूप हो जाना ही परमावश्यक है।

देहाभिमान से ऊपर उठकर जब साधक का मन आत्माभिमानी बुद्धि का आज्ञानुवर्ती रहता है, तब वही साधक ध्यान के वास्तविक आनन्द का उपभोग करता है। ऐसी स्थिति में ही ध्याता (साधक) ध्यान के द्वारा ध्येय में लय हो जाता है। इसी को समाधि लगाना कहते हैं।

ध्यान के मार्ग में बाधा पहुंचाने वाली कामनाओं नरक द्वार वाले काम क्रोध—लोभ के समूह मन के क्षयरोग का शमन करने के लिये सद्गुरु समर्थ होते हैं अत: साधक को अपने ध्यानपथ को निरापद बनाने के लिये सद्गुरु के शरण में जाना चाहिये। सद्गुरु शरणागति से ही मन पर आत्म संयम संभव होता है और साधक का कल्याण सम्पूर्ण रूप से होता है।

***

नर-देह में नारायण

लेखक—डा. रुद्रदत्त चतुर्वेदी (रामपुर)

बात जुलाई १९५६ की है। फिरोजाबाद के हनुमान मंदिर में कोई योगी आये हुए हैं ऐसा मेरे पिताश्री को एक सज्जन ने बताया। मैं और पिताजी उन्हें देखने गये, दर्शन करने नहीं। कुर्ता धोती पहिने भारी शरीर के एक सज्जन पलंग पर विराजमान थे। अनेक दाढ़ी वाले व्यक्ति (शिष्य गण) उनके आस–पास थे। मेरे मन में योगी की वही पुरानी छवि थी—लम्बी दाढ़ी, कम वस्त्र आदि। नवीं कक्षा का विद्यार्थी जो था। पिताजी का मन भी भरा नहीं—बोले आजकल जो दस बीस आसन करना सीख लेता है योगी लिखने लगता है।

मैं लम्बे समय से बीमार था सो श्री गुरुदेव ने नेती, दूध आदि बताया उसे लेकर उपचार विकल्प के रूप में अगले दिन पहुंच गया। परम सौभाग्य कि नेती गुरुदेव जी ने अपने कर कमलों से कराई। दूध रामेश्वर बाबा ने पिलाया। चूंकि गुरुदेव जी ने बुलाया था सो गुरु पूर्णिमा पर हम दोनों सवाई पहुँच गये। छोटा सा आश्रम, तीन चार झोंपड़ी सब कुछ सामान्य परन्तु शान्ति अपार सौ बार–बार जाने आकर्षण बढ़ा।

प्रवचन सुनने को मिले। गुरुदेव जी ध्यान करने की विधि में अपने घर के छोटे बालक पर ध्यान केन्द्रित करने की सरल विधि से अर्थात् स्थूल सूक्ष्म की ओर बढ़ने की विधि बताते थे तो दूसरी ओर माला लेकर जप का अभ्यास कराते थे ताकि अपांशु जप की विधि में बीच–बीच में मुड़ चिन्तन न हो और भ्रम भी न रहे कि हम तो निरंतर जाप कर रहे हैं।

जहाँ स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ाया जा रहा था वहीं योग और तंत्र का आधार मेरुदण्ड सीधा करके बैठने पर जोर दिया जाता था। आश्रम में आसनों के माध्यम से शरीर शुद्धि की ओर प्रगति थी तो जीवन तत्व साधन की विलक्षण उपादेयता लौकिक से पारलौकिता की ओर गतिमान कर रही थी। दीक्षित शिष्यों को चलते फिरते उठते बैठते मंत्र–जप करने का निर्देश **'यत्र प्राणो लीयते तत्र मनोलीयते'** के योग सूत्र को चरितार्थ कर रहा था और रात्रि जप कबीर की योग निद्रा को सरल रूप में व्याख्यायित। बड़े–बड़े साधनों और सूत्रों की सरल व्याख्या और प्रक्रिया जिज्ञासु और संस्कारी साधकों को **'अमर पंथ की गैल बतावै, गावै सद्गुरु वाणी'** साकार हो रही थी। श्री प्रभुजी के पावन चरित्र की लीलायें और कृपायें उन सूत्रों को सोदाहरण समझने में सहायता करती थीं।

ये समस्त कार्य उन अवतारी महापुरुष चन्द्रमोहन जी द्वारा संपादित हो रहे थे जो देखने में सामान्य प्रतीति देकर भ्रम उत्पन्न करते थे। श्री गुरुदेव में गरिमा तो थी, परन्तु अन्य आश्रमों के मठाधीशों की भांति न आडम्बर था, ना ही अभिमान। हास्य था पर हंसी नहीं थी। प्रक्रिया और औपचारिकता की घुटन का उनके दरबार में अभाव था। लल्ला शब्द का संबोधन और सिर पर स्नेहिल हाथ के स्पर्श मात्र से तनाव मुक्ति मिल

जाती थी और निरंतर रज प्रसाद के सेवन से कष्ट मुक्ति भी। सारा कार्य सहज और अबाध गति से चलता था। तांत्रिकों की भाँति उपचार का न तो निर्धारित समय था और न रीति नीति के बन्धन।

जो भी आया, जब भी आया उसने वरदान पाया। दया का अपार भंडार था कि कहीं कमी नहीं थी। यदि कमी थी तो लेने वालों की। कृपा की कथायें सैंकड़ों नहीं हजारों हैं। दयादान का क्षेत्र अपरिमित था— तीनों प्रकार के कष्टों का उद्धार था। हरि अनन्त, हरि कथा अनन्ता की स्थिति थी। और उस सौम्य कृपामय रूप के सम्मुख तर्क स्वतः विगलित हुआ उस दिन जब उन्हीं पिताश्री ने करुणा सागर से दीक्षा ली।

कम से कम एक उदाहरण के बिना यह लेख अपूर्ण होगा। मेरे पिताश्री का कुछ लोगों से सम्पत्ति रक्षा का विवाद था। उन्होंने न्याय में पराजित होकर एक तांत्रिक की शरण ली और तांत्रिक ने चुनौती दी कि मेरे पिता का जीवन अब समाप्ति की ओर है। खुली चुनौती श्री गुरुदेव से निवेदित की गई। उन्होंने अपने गले का हार उतार कर, कपड़े में सी कर पहिनने का निर्देश दे दिया। दिवाली सकुशल निकल गई। जनवरी में घर में बच्चा पैदा हुआ अतः शुद्धता की बात ध्यान में रखते हुए पिताजी ने वह माला उतार दी। तीसरे दिन तांत्रिक के प्रयोग के फलस्वरूप डाक्टरी भाषा में पिताजी को हार्ट अटैक हो गया। डाक्टरों ने बताया कि आज की रात अंतिम रात है। सुनकर जहाँ सभी लोग रोने लगे वहीं बहिन ने श्री प्रभूजी के समक्ष रखी वह माला उठाकर पिता जी को पहिना दी। डाक्टरों के विरोध करने पर उसने कहा कि आप तो अब अंतिम रात घोषित कर चुके हैं तो मुझे मत रोकिये।

हार पहिनने के १०—१५ मिनट में ही स्थिति में सुधार दिखाई देने लगा। तांत्रिक ने पुनः प्रयोग किया। प्रतीति हुई प्रभाव नहीं। अंत में खींझकर उसने अंतिम अस्त्र के रूप में घात (हंडिया) प्रहार किया। १९ जून ७० की शाम ६—६.३० बजे दिन के उजाले में एक हंडिया आती देखकर सभी विचलित हो गये। पिताजी ने मंत्र जाप प्रारम्भ कर दिया। सुखद आश्चर्य तब हुआ जब घात घर की चाहर दीवारी के बाहर घूमने लगी और घर की सीमा में प्रवेश न कर सकी। दो मिनट घूमने के बाद वह उसी दिशा में लौट गई जिधर से आई थी और जीवन—रक्षा हो गई।

ऐसे थे कृपामय गुरुदेव जो सहजभाव से कृपा करके अपने आश्रितों की रक्षा और उनका उद्धार करते थे। उन्होंने कभी भी अपने श्रीमुख से नहीं कहा कि मैं करता हूँ या कर दूँगा। सदैव श्री प्रभूजी (रामलाल जी महाराज) को श्रेय देते रहे। आज भले ही वे अलौकिक रूप से सहायता करते हैं परन्तु उनकी भौतिक अनुपस्थिति अक्सर मन में निराशा पैदा करती है, और एक पंक्ति बरबस याद आ जाती है।

तुम न जाने किस जहाँ में खो गये।
हम भरी दुनियाँ में तनहा हो गये।।

***

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था...

चित्तवृत्तिनिरोधः कहकर प्राचीन संस्कृत शब्द 'योग' की परिभाषा की गयी है। इसका अर्थ यह है कि योग वह विज्ञान है, जो हमें चित्त को परिवर्तन शील अवस्था से निरुद्ध कर उसे वश में करने की शिक्षा देता है। चित्त वह वस्तु है, जिससे हमारे मन का निर्माण होता है और जो निरन्तर बाह्य तथा आन्तरिक प्रभावों से प्रमथित होकर **संकल्प–विकल्प की** तरंगे उछलता रहता है। योग हमें सिखाता है कि मन का किस प्रकार नियमन किया जाय, जिससे वह सन्तुलन खोकर तरंगित न होने पाये।......

इसका अर्थ क्या है ? धर्म के विद्यार्थी के लिए ९९ प्रतिशत धार्मिक ग्रन्थ और विचार केवल अटकलबाजी हैं। एक मनुष्य सोचता है कि धर्म यह है, तो दूसरा सोचता है कि धर्म वह है। अगर एक व्यक्ति दूसरे से अधिक चतुर हुआ, तो वह दूसरे के अटकलों का खण्डन कर देता है और नये का सूत्रपात करता है। पिछले दो हजार, चार हजार वर्षों से–ठीक कितने काल से, किसी को ज्ञात नहीं– लोग नयी–नयी धर्म–व्यवस्थाओं का अध्ययन करते आ रहे हैं।.....जब वे तर्कों से समाधान नहीं कर पाते, तो कहते हैं, "विश्वास करो।" यदि वे शक्तिशाली हुए, तो अपना विश्वास उन्होंने बलात् लादा। आज भी ऐसा हो रहा है।

लेकिन कुछ ऐसे व्यक्ति हैं, जो इस स्थिति से पूर्ण सन्तुष्ट नहीं हो पाते। वे पूछते हैं, "क्या निस्तार का कोई मार्ग नहीं है ?" भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान और गणित में तो तुम इस प्रकार की अटकलबाजी नहीं करते। फिर क्या धर्म–विज्ञान इतर विज्ञानों की भांति नहीं हो सकता ? उन्होंने इसे इस रूप में प्रस्तुत किया–यदि वास्तव में मनुष्य की आत्मा का अस्तित्व है, यदि वह अमर है, यदि सचमुच ईश्वर की सत्ता है और वह जगत् का शास्ता है, तो उसका बोध यहीं होना चाहिये और यह सब बोध तुम्हारी ही अन्तश्चेतना में होना चाहिए।

मन का विश्लेषण किसी बाहरी यन्त्र से नहीं किया जा सकता। मान लो, जब मैं विचार कर रहा हूँ, तब तुम मेरे मस्तिष्क को देख रहे हो। उस समय तुमको उसमें कुछ अणुओं का परस्पर विनिमय मात्र दिखायी देगा। तुम विचार चेतना, मनोभाव और मानस–प्रतिमाओं को नहीं देख सकते। तुम केवल कम्पनों की राशि देखोगे–रासायनिक और भौतिक परिवर्तन। इस दृष्टान्त से हम देखते हैं कि इस प्रकार के विश्लेषण से काम नहीं चलेगा।

मन के रूप में मन के विश्लेषण का क्या कोई और तरीका है ? यदि कोई तरीका है, तो सच्चा धर्म–विज्ञान सम्भव है। राजयोग के विज्ञान का दावा है कि इस प्रकार की सम्भावना है। हम सब इसका अभ्यास कर सकते हैं और कुछ अंश तक सफल हो भी सकते हैं। एक बड़ी कठिनाई यह है–इन्द्रियगोचर विज्ञान में विषय–वस्तु को देखना अपेक्षाकृत सरल होता है। विश्लेषण के उपकरण भी सुनिश्चित होते हैं और दोनों ही स्थूल होते हैं। परन्तु मन के विश्लेषण में साधन और साध्य, दोनों एक ही होते हैं।....कर्ता और कर्म एक हो जाते हैं।.....

बाहरी विश्लेषण मस्तिष्क तक पहुँचेगा, तो उससे पता लगेगा कि भौतिक और रासायनिक परिवर्तन क्या हुए। इससे प्रश्न का हल निकालने में कभी सफलता नहीं मिलेगी। यह चेतना क्या है ? तुम्हारी कल्पना क्या है ? तुममें कहाँ से संकल्पों की यह विपुल राशि आती है और फिर कहाँ चली जाती है ? हम उन्हें अस्वीकार तो नहीं कर सकते। वे तथ्य हैं। मैंने कभी अपना मस्तिष्क नहीं देखा। मुझे निश्चय मानना पड़ेगा कि मेरे मस्तिष्क है। परन्तु आदमी अपनी चेतन कल्पनाओं को कभी अस्वीकार नहीं कर सकता।

बड़ी समस्या हम लोग स्वयं हैं। क्या मैं एक ऐसी लम्बी शृंखला हूँ, जिसे मैं देख नहीं पाता— एक कड़ी के तत्काल बाद दूसरी कड़ी आती है, परन्तु हैं वे बिल्कुल असम्बद्ध ? क्या मैं विज्ञान की ऐसे ही परिवर्तन के सतत प्रवाह की अवस्था हूँ ? या मैं उससे कुछ और अधिक हूँ— सार, सत् जिसे हम आत्मा कहते हैं ? दूसरे शब्दों में, मनुष्य में आत्मा होती है या नहीं ? क्या वह असम्बद्ध विज्ञान की अवस्थाओं की गठरी है या एकीकृत तत्व है ? यह बड़ा विवादास्पद है। यदि हम केवल विज्ञानों की गठरी हैं ....तो अमरत्व जैसा प्रश्न भ्रम मात्र है।... दूसरी ओर यदि हमारे भीतर कोई ऐसी वस्तु है, जो इकाई है, सार है, तब तो मैं अवश्य अमर हूँ। इकाई को नष्ट नहीं किया जा सकता और न उसे खण्डों में विभाजित किया जा सकता है। विभाजित तो संयुक्त पदार्थ ही किये जा सकते हैं।...

बौद्ध धर्म को छोड़ शेष सभी धर्मों का ऐसे किसी तत्व या द्रव्य में विश्वास है। और वे किसी न किसी रूप में इसके लिए संघर्ष भी कर रहे हैं। बौद्ध धर्म ऐसे तत्व को अस्वीकार करता है और उससे पूर्ण सन्तुष्ट है। वह कहता है परमात्मा, आत्मा अमृतत्व आदि विषयक बातें— इस प्रकार के प्रश्नों में माथापच्ची मत करो। किन्तु दुनिया के अन्य सभी धर्म इस सार (तत्व) को अंगीकार करते हैं। उन सबका विश्वास है कि सब परिवर्तनों के बावजूद मानव में आत्मा ही सार है, जगत् में परमेश्वर ही सार है। उन सबका विश्वास है कि आत्मा अमर है। ये सब अनुमान है। बौद्धों और ईसाइयों के इस विवाद का निपटारा कौन करे ? ईसाई धर्म कहता है कि एक सार वस्तु है, जो शाश्वत है। ईसाई कहता है, "मेरी बाइबिल का यह कथन है।" ...बौद्ध कहता है, "आपके ग्रन्थ में मेरा विश्वास नहीं है।"...

प्रश्न यह है कि क्या हम द्रव्य (आत्मा) हैं, या सूक्ष्म पदार्थ, परिवर्तनशील, तरंगायमान मन हैं ?... हमारे मन में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। भीतर वह द्रव्य—तत्व कहाँ है ? हम उसे पाते नहीं। मैं इस समय कुछ हूँ और फिर और कुछ हो जाता हूँ। यदि एक क्षण के लिए तुम इन परिवर्तनों को बन्द कर दो, तो उस सार तत्व के प्रति मेरा विश्वास हो जायेगा।...

निश्चय ही ईश्वर तथा स्वर्ग सम्बन्धी सभी विश्वास संगठित धर्मों के क्षुद्र विश्वास हैं। कोई भी वैज्ञानिक धर्म इस तरह की प्रस्तावना कभी नहीं करता।

***

जीवात्मा

पृथगुपदेशात्

वेदांतदर्शन २/३/२८

जीवात्मा के विषय में अणुपरिणाम से भिन्न उपदेश श्रुति में मिलता है, इसलिए जीवात्मा अणु नहीं, विभु यानि अनन्त है।

* * *

वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीव: स विज्ञेय: स चानन्त्याम कल्पते।।

श्वेता श्वेतरोपनिषद् ५/

बाल की नोंक के सौ वें भाग के पुन: सौ भागों में कल्पना किये जाने पर जो एक भाग होता है, वही (उसी के बराबर) जीव का स्वरूप समझना चाहिये। और वह असीम भाव वाला होने में समर्थ है।

* * *

इन्द्रियेभ्य: परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मन:।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धरात्मा महान् पर:।।

कठोपनिषद् १/३/१०

क्योंकि इन्द्रियों से शब्दादि विषय बलवान् है और शब्दादि विषयों से मन पर (प्रबल) है; और मन से भी बुद्धि पर (बलवती) है तथा बुद्धि से महान आत्मा (उन सबका स्वामी होने के कारण) अत्यन्त श्रेष्ठ और बलवान है।

* * *

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्य: सर्वगत: स्थाणुरचलोऽयं सनातन:।।

श्री मद्भागवद् गीता २/२४

यह आत्मा अच्छेद्य है; यह आत्मा अदाह्य, अक्लेद्य और नि:सन्देह अशोष्य है तथा यह आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, अचल स्थिर रहने वाला और सनातन है।

* * *

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावास्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते।।

श्रीमद्भगवद्गीता १३/३२

जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त आकाश सूक्ष्म होने के कारण लिप्त नहीं होता वैसे ही देह में सर्वत्र स्थित आत्मा निर्गुण होने के कारण देह के गुणों से लिप्त नहीं होता।

SIDDHAYOGA Regd. No. L. AG. 008

जून, 1999

प्रेषण कार्यालय :–

सिद्धयोग

योग-सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक
श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

PRINTED MATTER

Book Post

श्री ______________________

____

____

समानी व आकूतिः समना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।

(ऋग्वेद १०/१९१/४)

आप सब मानवों की आकृति अर्थात् संकल्प निश्चय प्रयत्न एवं व्यवहार समान-समभाव वाले सरल-कापट्यादि दोषरहित, स्वच्छ रहें एवं आप सब मानवों के हृदय भी समान-निर्द्वन्द्व, हर्ष-शोक रहित सम्भाव वाले रहें तथा आज सब मानवों का मन भी समान सुशील, एक प्रकार के ही सद्भाव वाला रहे। जिस प्रकार आप सबका शोभन (अच्छा) साहित्य (सहभाव) धमार्थ आदि का समुच्चय सम्पादित हो, उस प्रकार आपके आकृति-हृदय एवं मन हों।

प्रकाशक एवं मुद्रक—विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिण्टिंग प्रेस, बसई कलाँ, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लाक एवं प्रिण्टिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र सवांई, आगरा से प्रकाशित। फोन : 732326